* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

कल्याण

मूल्य १० रुपये

वर्ष ९८

गीताप्रेस, गोरखपुर

संख्या ५

भगवान् शिवका लोकमंगल रूप

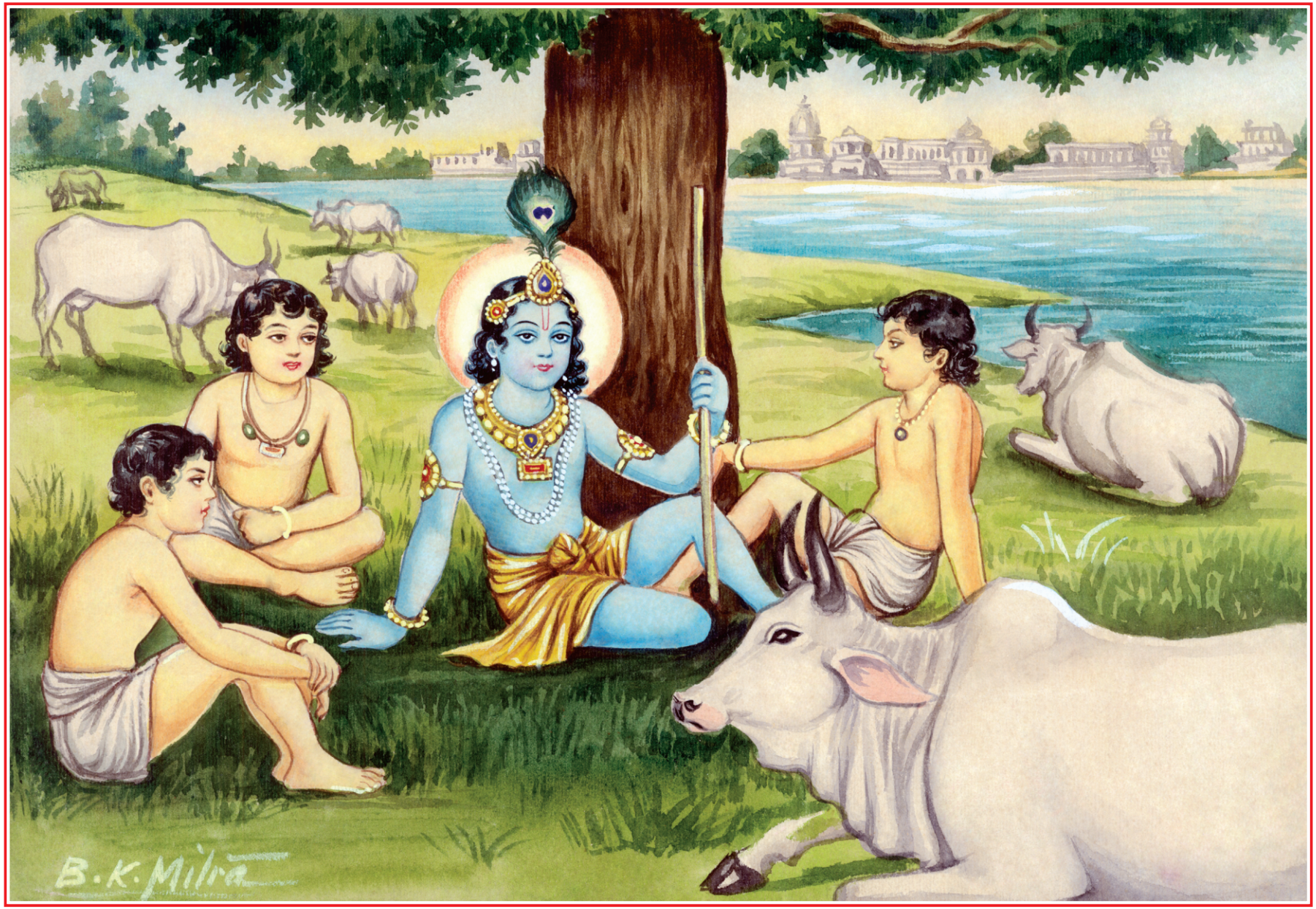

गोपाल कृष्ण

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

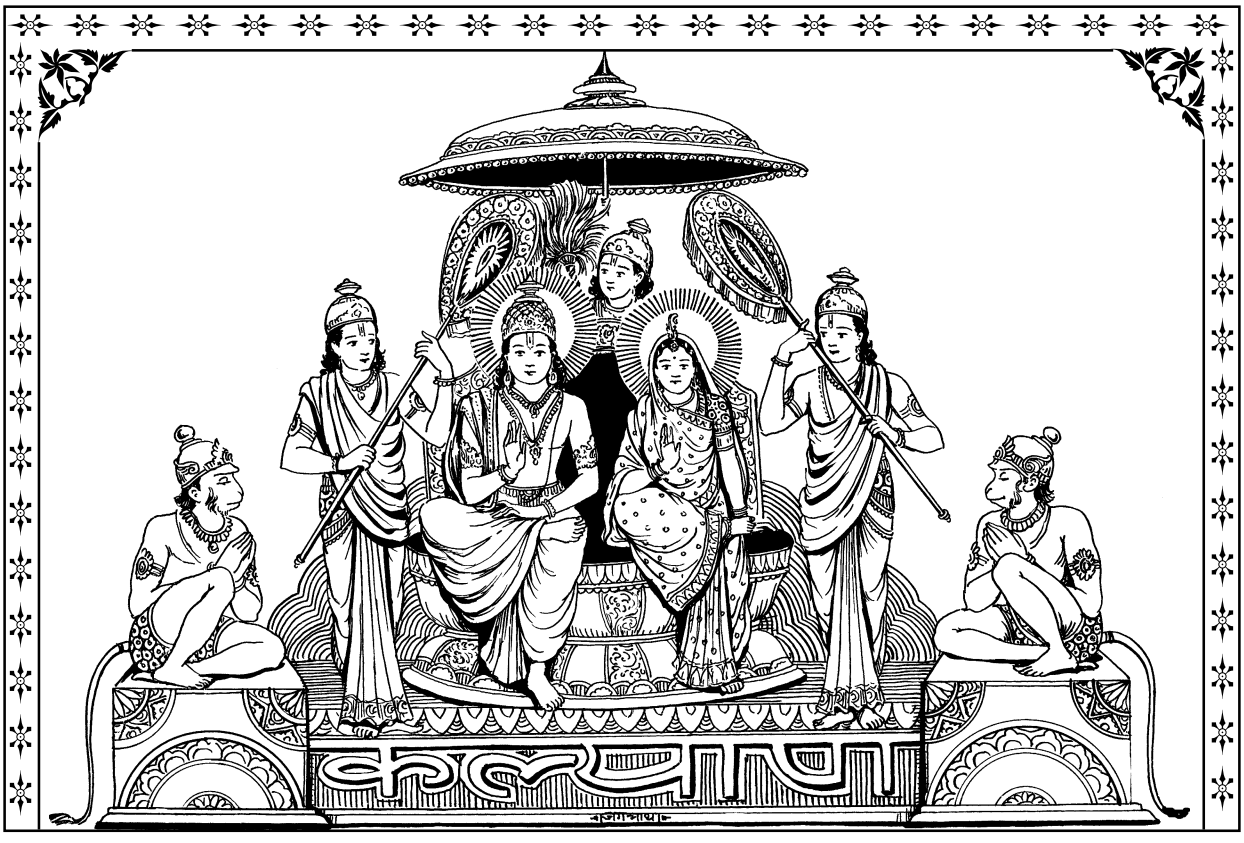

चरितं रघुनाथस्य शतकोटिप्रविस्तरम्।
एकैकमक्षरं पुंसां महापातकनाशनम्॥

वर्ष ९८ | गोरखपुर, सौर ज्येष्ठ, वि० सं० २०८१, श्रीकृष्ण-सं० ५२५०, मई २०२४ ई० | संख्या ५
पूर्ण संख्या ११७०

गोपालकृष्णाकी वन्दना

वन्दे मुकुन्दमरविन्ददलायताक्षं
कुन्देन्दुशङ्खदशनं शिशुगोपवेषम्।
इन्द्रादिदेवगणवन्दितपादपीठं
वृन्दावनालयमहं वसुदेवसूनुम्॥

[कुलशेखरकृत मुकुन्दमाला]

जिनके कमलदलसदृश विशाल नेत्र हैं, कुन्द, चन्द्र अथवा शंखके सदृश दन्त हैं, बालगोपालका वेष है, इन्द्रादिक देवताओंके द्वारा जिनके चरणोंकी पादुकाएँ वन्दित हैं, उन वृन्दावननिवासी वसुदेवनन्दन मुकुन्दकी मैं वन्दना करता हूँ।

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण १,८०,०००)

कल्याण, सौर ज्येष्ठ, वि० सं० २०८१, श्रीकृष्ण-सं० ५२५०, मई २०२४ ई०, वर्ष ९८—अंक ५

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ-संख्या
१- गोपालकृष्णकी वन्दना	३
२- सम्पादकीय	५
३- कल्याण	६
४- भगवान् शिवका लोकमंगल रूप **[आवरणचित्र-परिचय]**	७
५- परलोक एवं पुनर्जन्मका प्रतिपादन (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)	८
६- दुर्जन-संगका फल **[बोधकथा]**	९
७- धर्मका वास्तविक अर्थ (माननीय श्रीयुत श्रीप्रकाशजी)	१०
८- श्रद्धापर एक दृष्टान्त (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)	१२
९- प्रार्थनाका स्वरूप (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)	१३
१०- जगत्का स्वरूप **[बोधकथा]**	१४
११- कल्याणका निश्चित उपाय **[साधकोंके प्रति]** (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)	१५
१२- मानवीय मूल्योंकी स्थापनामें अध्यात्मकी भूमिका (श्रीश्यामसुन्दरजी मिश्र)	१६
१३- हर देशमें तू, हर वेशमें तू (श्रीमती कमलजी राठी 'साधन')	१८
१४- शंख-महिमा (श्रीशंकरलालजी माहेश्वरी)	१९
१५- श्रीफल—नारियल (वैद्य श्रीबालकृष्णजी गोस्वामी)	२१
१६- दूसरोंकी तृप्तिमें तृप्ति **[बोधकथा]**	२२
१७- वैष्णवप्रतीकदर्शन (पं० श्रीश्यामजीतजी दुबे आथर्वण)	२३
१८- प्रेम-दयाके बिना व्रत-उपवास व्यर्थ **[बोधकथा]**	२४
१९- छत्तीसगढ़का शिवरीनारायण-मन्दिर **[तीर्थ-दर्शन]** (डॉ० श्रीप्रदीपकुमारजी शर्मा)	२५
२०- गंगाका भूगोल, माहात्म्य और तीर्थवैशिष्ट्य (श्रीमती (डॉ०) कौमुदीजी श्रीवास्तव)	२८
२१- आपसी विरोधसे अनर्थ	३१
२२- गोरक्षा शिवधर्म है **[गो-चिन्तन]** (काशी श्रीजगद्गुरु-विश्वाराध्यज्ञानसिंहासनाधीश्वर वीरभद्र शिवाचार्य महास्वामी महाराज)	३२
२३- दूषित अन्नका प्रभाव **[बोधकथा]**	३३
२४- तुलसी रामायण और तेलुगुका गोपीनाथ रामायणम् (डॉ० श्री ए०बी० साई प्रसाद)	३४
२५- १०८ राम-नाम-माला (प्रे०—योगाचार्य डॉ० श्रीओमप्रकाशजी 'आनन्द')	३९
२६- सन्त श्रीनारायणपुरीजी महाराज **[सन्त-चरित]** (श्रीपंकज जयप्रकाशजी शर्मा)	४१
२७- सुभाषित-त्रिवेणी	४३
२८- व्रतोत्सव-पर्व **[आषाढ़मासके व्रत-पर्व]**	४४
२९- कृपानुभूति	४५
३०- पढ़ो, समझो और करो	४७
३१- मनन करने योग्य	५०

चित्र-सूची

१- भगवान् शिवका लोकमंगल रूप	(रंगीन)	आवरण-पृष्ठ
२- गोपाल कृष्ण	(,,)	मुख-पृष्ठ
३- भगवान् शिवका लोकमंगल रूप	(इकरंगा)	७
४- छत्तीसगढ़का शिवरीनारायण-मन्दिर	(,,)	२५
५- छत्रपति शिवाजीका नारी-सम्मान	(,,)	५०

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

एकवर्षीय शुल्क ₹500 सभी अंक रजिस्ट्रीसे / एकवर्षीय शुल्क ₹300 मासिक अंक साधारण डाकसे
पञ्चवर्षीय शुल्क ₹2500 सभी अंक रजिस्ट्रीसे / पञ्चवर्षीय शुल्क ₹1500 मासिक अंक साधारण डाकसे
विदेशमें Air Mail शुल्क वार्षिक US$ 50 (₹4,000) / Cheque Collection Charges 6 $ Extra

संस्थापक—**ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका** आदिसम्पादक—**नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार**
सम्पादक—**प्रेमप्रकाश लक्कड़**, सहसम्पादक—**कृष्णकुमार खेमका**
केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित

website : **gitapress.org**	e-mail : **kalyan@gitapress.org**	✆ **09235400242 / 244**	**WhatsApp : 09235400242**
पुस्तक-बिक्रीविभाग :	e-mail : **booksales@gitapress.org**	✆ **09235400242 / 244**	**WhatsApp : 09235400244**

सदस्यता-शुल्क—**व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस—273005, गोरखपुर को भेजें।**
Online सदस्यता हेतु gitapress.org के **Kalyan** पर click करके **Subscribe** option पर click करें।
'कल्याण' के मासिक अङ्क www.gitapress.org के **E-Books Option** पर नि:शुल्क पढ़ें।

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।

॥ श्रीहरिः ॥

साधकोंको जिस प्रकार अपने आपको व्यवस्थित करना चाहिये, इस विषयमें अनुभवी मनीषियोंने यह विधि बतायी है। अपने पंचकोशके इस देहको साधन-पथपर आगे बढ़ानेमें यह अत्यन्त उपयोगी है—

अन्नमय कोश (स्थूल देह)-**को पुष्ट और नीरोग रखनेके लिये आहारका संयम अपेक्षित है। सात्त्विक, पौष्टिक और संयमित आहार प्रसन्नतापूर्वक प्रभुप्रसादके रूपमें ग्रहण करना चाहिये।**

प्राणमय कोश (नाड़ी-तन्त्र)-**को सुचारु बनाये रखनेके लिये योग्यतानुसार योगासन और प्राणायामका अभ्यास नित्य करना चाहिये।**

मनोमय कोश (मानसिक सन्तुलन)-**हेतु नित्य थोड़े समय ध्यानका अभ्यास करना चाहिये।**

विज्ञानमय कोश (अन्तर्मुखता)-**को विकसित करनेके लिये श्रद्धा एवं निरहंकारितासे युक्त होकर विवादसे बचना आवश्यक है।**

आनन्दमय कोश (ब्रह्मस्वरूप)-**की प्राप्तिमें सर्वव्यापी परमात्माकी सर्वत्र उपस्थितिको जानते हुए सबके प्रति प्रेमपूर्ण व्यवहार अपेक्षित है।**

प्रभुकृपाका आश्रय लेकर प्रयत्न करनेपर कोई भी कार्य असम्भव नहीं होता। भगवन्नामस्मरणमें अचिन्त्य शक्ति होती है।

—सम्पादक

हरे कृष्ण हरे … कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे … राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे … कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे … राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे … कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे … राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे … कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे … राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे … कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे … राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे … कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे … राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे … कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे … राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे … कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे … राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे … कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे … राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे … कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे … राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे … कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे … राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे … कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे … राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे … कृष्ण हरे हरे॥

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

कल्याण

याद रखो—तुम जो कुछ देते हो, वही तुम्हारे पास अनन्तगुना होकर लौट आता है। इस समय तुम्हारे पास सुख-दुःख, लाभ-हानि जो कुछ भी है, वह तुम्हारे ही पहले दिये हुएका फल है।

याद रखो—जैसा बीज तुम बोओगे, परिणाममें तुम्हें वैसा ही फल मिलेगा। बोओगे आक और फल मिलेगा उसका आम बनकर—यह नहीं हो सकता। आक तथा आमके पहले अंकुर एक-से निकल सकते हैं, पर अन्तिम फल तो वही होगा, जो बीज था।

याद रखो—तुम सुख चाहते हो, प्रेम चाहते हो, मान चाहते हो, बड़ाई चाहते हो, आश्रय चाहते हो, आश्वासन चाहते हो, शान्ति चाहते हो, हित चाहते हो, तो इनमेंसे तुम्हारे पास जो कुछ है, जितना है, उतना उदारताके साथ दूसरोंको देते रहो—तुम्हारे पास किसी-न-किसी रूपमें ये सभी चीजें हैं भी; क्योंकि भगवान् ये सभी चीजें प्रायः सभीको देते हैं, पर जो मनुष्य इनको अपने पास ही रख लेना चाहता है, उसकी ये चीजें पड़े बीजोंके सड़ जानेकी भाँति नष्टप्राय हो जाती हैं और जो देता है, उसको खेतमें पड़े बीज अनन्तगुने होकर वापस मिल जाते हैं, वैसे ही बहुत बड़े परिमाणमें ये वापस मिल जाती हैं।

याद रखो—तुम दूसरोंके अपने बनोगे, उनके दुःखमें हिस्सा बटाओगे, पीड़ामें उन्हें आश्वासन दोगे, उनके प्रति सदा प्रेम, सेवा, सहानुभूति तथा उदारताका बर्ताव करोगे, तो सारा जगत् तुम्हारा अपना बन जायगा, सबसे तुम्हें आत्मीयता, सेवा, सहायता मिलती रहेगी—सदा अनन्तगुनी होकर।

याद रखो—तुम दूसरोंके दोषोंको न देखकर उनके गुण देखोगे, उनके बर्तावकी भूल न बताकर अपनी भूल मान लोगे, उन्हें झिड़की न देकर उनका अपमान न करके सम्मान करोगे, उनके जीवनमें नये छिद्र न बनाकर उनके पुराने छिद्रोंको अपने गुण, त्याग—बलिदान तथा उदारतासे ढक दोगे, किसीके लिये भी सूई न बनकर धागा बनोगे, तो तुम्हें सब लोगोंसे अपार प्यार मिलेगा। तुम सबके अपने हो जाओगे। तुम्हारी सुख-सुविधाका ध्यान लोग अपनी सारी सुख-सुविधाका उत्सर्ग करके भी रखेंगे।

याद रखो—यदि तुम ऐसा व्यवहार-बर्ताव निष्काम-भावसे करोगे, सबमें भगवान् मानकर भगवान्‌की सेवाके भावसे करोगे, भगवान्‌की प्रीतिके लिये ही केवल करोगे तो तुम्हें इसीसे भगवत्प्राप्ति हो जायगी—दुर्लभ भगवत्प्रेम प्राप्त हो जायगा।

याद रखो—तुम्हारा यह जीवन किसीको दुखी बनाने, किसीका सुख छीनने तथा किसीको असुविधा देनेके लिये नहीं है। वैसा जीवन तो राक्षसोंका होता है। तुम मानव हो, तुम्हारा जीवन सेवाके लिये—अपना सब कुछ देकर सबको सुख पहुँचानेके लिये है। तभी तुम मानव हो, तभी तुम्हारे मानव-जीवनकी महत्ता है और इस महत्ताको केवल भगवत्प्रीत्यर्थ स्वीकार करनेमें ही मानव-जीवनकी सफलता है। '**शिव**'

आवरणचित्र-परिचय—

भगवान् शिवका लोकमंगल रूप

एक समयकी बात है, देवों और दानवोंने अमृत पानेकी इच्छासे समुद्र-मन्थन किया। मन्थनमें सर्वप्रथम सर्वाधिक विषैला कालकूट विष निकला। कालकूटकी भयंकरतासे प्राणिमात्र जीवन धारण करनेके लिये चिन्तित हो उठा। यदि जीवोंमें कालकूटने अपना विषैला प्रभाव दिखाया तो ब्रह्माजीकी यह सृष्टि कैसे बचेगी? प्राणी तो क्या देवता तथा दानवोंमेंसे कोई भी प्राणी—जलचर, थलचर, नभचर न बचेगा। यहाँतक कि शस्यश्यामला धराकी उर्वराशक्ति भी सदाके लिये विनष्ट हो जायगी।

कालकूटकी ज्वालासे विश्वके सभी प्राणी झुलसने लगे। सृष्टिकी रक्षाके लिये देव-दानव सभी चिन्तित हो उठे। 'कहाँ रखा जाय इस विषको?' देव और दानव दोनोंमें देरतक मन्त्रणा होती रही। ऐसा कौन स्थान है, जहाँ विषका असर न हो?

केवल भगवान् शिव ही रक्षा कर सकते हैं। रक्षाकी भावनासे जो भी शंकरकी शरणमें जाता है, शम्भुके शान्तिमय, मुक्त, क्षमाशील और कल्याणरूपका स्मरण करके सहायताकी आर्त पुकार करता है, वह सुरक्षा अवश्य पाता है।

शिवका अर्थ ही मंगलमय, कुशल-क्षेम और मुक्तिप्रदाता है। जो प्राणोंपर शासन करते हैं, वे शिवात्मा कहलाते हैं। जो वायुको वशमें रखते हैं, वे सदाशिव शुद्धात्मा कहलाते हैं। जो जीवनको वशमें रखते हैं, वे परम शिव कहलाते हैं।

देवताओं और दानवोंने भगवान् शंकरकी विनती की—**'शिवस्य तु वशे कालो न कालस्य वशे शिवः।'** हे शिव! काल आपके अधीन है, आप कालसे मुक्त चिदानन्द हैं। जिसे मृत्युको जीतना हो, उसे हे भगवन्! आपमें स्थित होना चाहिये। आपका मन्त्र ही मृत्युंजय है। हे शंकर! आप त्र्यम्बक अर्थात् तीन नेत्रोंवाले हैं। 'सत्यम्, शिवम् और सुन्दरम्' आपके तीन नेत्र हैं। आप कर्म, भक्ति और ज्ञानको धारण करते हैं। भगवन्! भूः, भुवः और स्वः—भूमि, अन्तरिक्ष और द्युलोक सर्वत्र आप ही परिव्याप्त हैं। जीवन, मृत्यु और मुक्ति—तीनों ही आपके नेत्र हैं। आप बालचन्द्र, गंगा और शक्ति—तीनोंको धारण करते हैं। अतः कालकूटकी दाहक ज्वालासे प्राणिमात्रकी रक्षा कीजिये।

उस विषम स्थितिमें सबके हाथ विनतीमें शिवके आगे जुड़े हुए थे। सबने एकाग्र होकर बड़ी श्रद्धापूर्वक भगवान् शिवका ध्यान किया। शिवका ध्यान सदा ही कल्याणकारी होता है।

भक्तोंकी आर्त पुकार सुनकर भगवान् शिव प्रकट हुए। उन्होंने दुष्ट कालकूटकी प्राणिमात्रको जलानेवाली ज्वालाएँ देखीं। वे सृष्टिका अन्त आते देखकर अचानक चिन्तित हो उठे। सोचने लगे 'यदि सृष्टिमें मानव-समुदायमें कहीं भी यह विष—कलह-क्लेशरूप विष, मतभेद, राग-द्वेष, वाद-विवाद, संघर्ष, दोष-दुर्गुण आदि रहे तो प्राणिमात्र अशान्त होकर जलने लगेगा। इसे सुरक्षित रखनेको ऐसी जगह होनी चाहिये कि यह किसीको नुकसान न पहुँचा सके। सभी जीव सुरक्षित रहें।

ऐसा निरापद सुरक्षित स्थान मेरा, स्वयं मेरा ही कण्ठप्रदेश है। यदि हलाहल पेटमें चला गया तो मृत्यु निश्चित है, बाहर रह गया तो सारी सृष्टि ही भस्म हो जायगी। फिर 'यह कहाँ रहे?'

उन्होंने एक ही आचमनमें लोक-संहारी विषको अपने गलेमें धारण कर लिया। तभीसे विषके प्रभावसे उनका कण्ठ नीले रंगका हो गया, वे नीलकण्ठ कहलाने लगे और देवोंके भी देव महादेव बन गये।

[डॉ० श्रीरामचरणजी महेन्द्र]

परलोक एवं पुनर्जन्मका प्रतिपादन

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

परलोक एवं पुनर्जन्मके प्रतिपादक अनेकों प्रमाण शास्त्रोंमें भरे पड़े हैं। वाल्मीकीय रामायणमें युद्धके बाद दशरथजीका आना तथा श्रीराम और लक्ष्मण आदिसे वार्तालाप करना परलोकका जीता-जागता प्रमाण है। इसके लिये वाल्मीकीय रामायण, युद्धकाण्ड ११९वाँ सर्ग देखिये।

पितरोंके निमित्त पिण्डदान, श्राद्ध-तर्पण आदिका उल्लेख भी स्थान-स्थानपर आया है। श्रीरामचन्द्रजी महाराजने भी पिताकी मृत्युका संवाद सुनते ही मन्दाकिनीके तीरपर जाकर तर्पण किया एवं स्वयं जैसा भोजन किया करते थे, उसीके पिण्ड बनाकर दशरथजीके निमित्त दिये—

ततो मन्दाकिनीं गत्वा स्नात्वा ते वीतकल्मषाः॥
राज्ञे ददुर्जलं तत्र सर्वे ते जलकाङ्क्षिणे।
पिण्डान् निर्वापयामास रामो लक्ष्मणसंयुतः॥
इङ्गुदीफलपिण्याकरचितान् मधुसम्प्लुतान्।
वयं यदन्नाः पितरस्तदन्नाः स्मृतिनोदिताः॥

(अध्यात्म० अयोध्या० ९। १७—१९)

'फिर सब लोग मन्दाकिनीपर जाकर स्नान करके पवित्र हुए। वहाँ उन सबने जलाकांक्षी महाराज दशरथको जलांजलि दी तथा लक्ष्मणजीके सहित श्रीरामचन्द्रजीने पिण्ड दिये। जो हमारा अन्न है, वही हमारे पितरोंको प्रिय होगा—यही स्मृतिकी आज्ञा है—यों कह उन्होंने इंगुदी फलकी पीठीके पिण्ड बना उनपर मधु डालकर उन्हें प्रदान किया।'

वाल्मीकीय रामायणमें भी इसी भावके द्योतक श्लोक मिलते हैं।

बहुत-से लोग यह शंका करते हैं कि 'मरनेके बाद आत्मा रहता है या नहीं, किये हुए कर्मोंका फल कर्ताको परलोकमें मिलता है या नहीं, मृत व्यक्तिके लिये दिया हुआ पदार्थ उसे मिलता है या नहीं और जो मृत व्यक्ति मुक्त हो गया है, उसके प्रति दिया हुआ पदार्थ किसको मिलता है?' इन प्रश्नोंका समाधान यह है कि 'मरनेपर आत्मा अवश्य रहता है तथा किये हुए कर्मोंका फल कर्ताको अवश्य मिलता है। वह इस लोकमें भी मिल जाता है और शेष बचा हुआ परलोकमें मिलता है। मृत व्यक्तिके लिये जो कुछ दिया जाता है, वह सब उसे प्राप्त होता है; किंतु जो मृत व्यक्ति मुक्त हो गया है, उसके प्रति दिया हुआ कर्ताके संचित कर्मरूप कोषमें जमा होता है।'

यह बात युक्तिसंगत भी है। जो आदमी जिस व्यक्तिके नामसे बैंकमें रुपये जमा कराता है, उसी व्यक्तिके नाम रुपये जमा हो जाते हैं और जिसके नामसे जमा होते हैं, उसीको मिलते हैं, दूसरेको नहीं। और जैसे यहाँ जमा कराये हुए रुपये विदेशमें वहाँके सिक्केके रूपमें मिल जाते हैं, वैसे ही पितरोंके नामसे किये हुए पिण्ड, तर्पण, ब्राह्मण-भोजन आदि कर्मका जितना मूल्य आँका जाता है, उतना ही फल उस प्राणीको वह जिस योनिमें होता है, वहाँकी आवश्यक वस्तुके रूपमें प्राप्त हो जाता है। अर्थात् यदि वह प्राणी गाय है तो उसे चारेके रूपमें, देवता है तो अमृतके रूपमें, मनुष्य है तो अन्नके रूपमें और बन्दर आदि है तो फल आदिके रूपमें उतने ही मूल्यकी वस्तु मिल जाती है।

यदि कहें कि 'जीवित व्यक्तिके लिये भी यदि कोई यज्ञ, दान, अनुष्ठान, व्रत, उपवास आदि कर्म करता है तो क्या वह उसे भी मिलता है?' तो इसका उत्तर यह है कि 'अवश्य उसे मिलता है। नहीं तो, फिर यजमानके लिये जो ब्राह्मण यज्ञ, तप, अनुष्ठान, पूजा, पाठ आदि करता है, वह किसको मिलेगा? न्यायतः वह यजमानको ही मिलेगा; कर्म करनेवाले ब्राह्मणको नहीं।'

यदि कोई प्राणी मुक्त हो गया है तो उसके निमित्त किया हुआ कर्म कर्ताको ही मिलता है। जैसे किसी आदमीको रजिस्ट्री चिट्ठी या बीमा भेजी जाती है और जिसको भेजी जाय, वह आदमी मर गया हो तो फिर वह लौटकर भेजनेवालेको ही वापस मिल जाती है, उसी प्रकार इस विषयमें भी समझना चाहिये।

नीचे लिखे युक्ति-प्रमाणोंसे भी यही सिद्ध होता है कि परलोक अवश्य है और प्राणियोंका पुनर्जन्म होता है—

(१) शरीरकी तरह आत्माका परिवर्तन नहीं होता। शरीरमें तो हम सभीके अवस्थानुसार परिवर्तन होता देखा जाता है। आज जो हमारा शरीर है, कुछ वर्ष बाद वह बिलकुल बदल जायगा। उसके स्थानमें दूसरा ही शरीर बन जायगा—जैसे पहलेके नख और केश कटते जाते हैं और नये आते रहते हैं। बाल्यावस्थामें हमारे सभी अंग कोमल और छोटे होते हैं, कद छोटा होता है, स्वर मीठा होता है, वजन भी कम होता है तथा मुखपर रोएँ नहीं होते। जवान होनेपर हमारे अंग पहलेसे कठोर और बड़े हो जाते हैं, आवाज भारी हो जाती है, कद लम्बा हो जाता है, वजन बढ़ जाता है तथा दाढ़ी-मूँछ आ जाती हैं। इसी प्रकार बुढ़ापेमें हमारे अंग शिथिल हो जाते हैं, शरीरकी सुन्दरता नष्ट हो जाती है, चमड़ा ढीला पड़ जाता है, बाल पक जाते हैं, दाँत ढीले हो जाते हैं तथा गिर जाते हैं एवं शरीर तथा इन्द्रियोंकी शक्ति क्षीण हो जाती है। यही कारण है कि बालकपनमें देखे हुए किसी व्यक्तिको उसके वृद्ध होनेपर हम सहसा नहीं पहचान पाते। परंतु शरीर बदल जानेपर भी हमारा आत्मा नहीं बदलता। दस वर्ष पहले जो हमारा आत्मा था, वही आत्मा इस समय भी है। उसमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ। यदि होता तो आजसे दस वर्ष अथवा बीस वर्ष पहले हमारे जीवनमें घटी हुई घटनाका हमें स्मरण नहीं होता। दूसरेके द्वारा अनुभव किये हुए सुख-दुःखका जिस प्रकार हमें स्मरण नहीं होता। परंतु आजकी घटनाका हमें दस वर्ष बाद अथवा बीस वर्ष बाद भी स्मरण होता है; इससे मालूम होता है कि अनुभव करनेवाला और स्मरण करनेवाला दो व्यक्ति नहीं, बल्कि एक ही व्यक्ति है। यों जिस प्रकार वर्तमान शरीरमें इतना परिवर्तन होनेपर भी आत्मा नहीं बदला, उसी प्रकार मरनेके बाद दूसरा शरीर मिलनेपर भी आत्मा नहीं बदलता। इससे आत्माकी नित्यता सिद्ध होती है।

(२) मनुष्य अपना अभाव कभी नहीं देखता। वह यह कभी नहीं सोचता कि एक दिन मैं नहीं रहूँगा, अथवा मैं पहले नहीं था। अपने अभावके बारेमें आत्माकी ओरसे उसे कभी समर्थन नहीं मिलता। वह यही सोचता है कि मैं सदासे हूँ और सदा रहूँगा। इससे भी आत्माकी नित्यता सिद्ध होती है।

(३) बालक जन्मते ही रोने लगता है और जन्मनेके बाद कभी हँसता है, कभी रोता है, कभी सोता है; जब माता उसके मुखमें स्तन देती है, तो वह उसमेंसे दूध खींचने लगता है और धमकाने आदिपर भयसे काँपता हुआ भी देखा जाता है। बालकके ये सब आचरण पूर्वजन्मको सूचित करते हैं; क्योंकि इस जन्ममें तो उसने ये सब बातें सीखीं नहीं। पूर्वजन्मके अभ्याससे ही ये सब बातें उसके अन्दर स्वाभाविक ही होने लगती हैं। पूर्वजन्ममें अनुभव किये हुए सुख-दुःखका स्मरण करके ही वह हँसता और रोता है, पूर्वमें अनुभव किये हुए मृत्युभयके कारण ही वह काँपने लगता है तथा पूर्वजन्ममें किये हुए स्तन्यपानके अभ्याससे ही वह माताके स्तनका दूध खींचने लगता है। इससे भी पुनर्जन्म सिद्ध होता है।

बोध-कथा—

दुर्जन-संगका फल

कोई राजा वनमें आखेटके लिये गया था। थककर वह एक वृक्षके नीचे रुक गया। वृक्षकी डालपर एक कौआ बैठा था। संयोगवश एक हंस भी उड़ता आया और उसी डालपर बैठ गया। कौएने स्वभाववश बीट कर दी जो राजाके सिरपर गिरी। इससे क्रोधमें आकर राजाने धनुषपर बाण चढ़ाया और कौएको लक्ष्य करके बाण छोड़ दिया। धूर्त कौआ तो उड़ गया; किंतु बाण हंसको लगा और वह लड़खड़ाकर नीचे गिर पड़ा।

राजाने आश्चर्यसे कहा—'अरे! इस वनमें क्या सफेद कौए होते हैं?'

मरते हंसने उत्तर दिया—'राजन्! मैं कौआ नहीं हूँ। मैं तो मानसरोवरवासी हंस हूँ; किंतु कुछ क्षण कौएके समीप बैठनेका यह दारुण फल मुझे प्राप्त हुआ है।'

धर्मका वास्तविक अर्थ

[अनाचारका निराकरण]

(माननीय श्रीयुत श्रीप्रकाशजी)

'धर्म' शब्द बड़े व्यापक अर्थमें प्रयोग होता रहा है। इस कारण यदि एक तरफ इसका बहुत बड़ा महत्त्व है, तो दूसरी तरफ इसको समझना कठिन भी है। साधारण प्रकारसे इसका अर्थ अंग्रेजीमें 'रेलिजन' और फारसीमें 'मज़हब' बतलाया जाता है; पर यदि इन शब्दोंके पर्यायस्वरूप 'सम्प्रदाय' शब्दका प्रयोग हो, तो सम्भवत: अधिक उपयुक्त होगा। हमारे यहाँ सभी बातों, चीजों और परिस्थितियोंमें 'धर्म' शब्दका प्रयोग कर दिया जाता है। इसी कारण मैक्समूलरने कहा कि 'हिन्दू सोने-जागने, उठने-बैठने, खाने-पीने, चलने-फिरने—सबमें ही धर्मका संनिवेश करता है।' भगवद्गीतामें कितने ही स्थानोंपर 'धर्म' शब्दका अर्थ 'कर्तव्य' प्रतीत होता है। रीति-रस्म, आचार-विचार, प्रतिदिनके साधारण-से-साधारण कार्यके सम्बन्धमें हम कहते हैं कि ऐसा करना, न करना धर्म अथवा अधर्म है।

सभी मनुष्य-समुदायोंमें धार्मिक शिक्षा आवश्यक मानी जाती है। इस शिक्षाके अन्तर्गत गृहस्थ और अध्यापक अपने सन्ततियों और विद्यार्थियोंको बतलाते हैं कि हमारे धर्मके अनुसार संसारकी सृष्टि अमुक प्रकारसे हुई। हमारे धर्मके प्रवर्तक अमुक-अमुक हुए, जिनका हमें सम्मान करना चाहिये। हमारे धर्मके अमुक-अमुक बाह्यचिह्न हैं, जिन्हें हमें धारण करना चाहिये और हमारे धर्मके अनुसार उचित-अनुचित, न्याय-अन्याय इस प्रकार माना गया है और इसीके अनुसार सबको चलना चाहिये। थोड़ेमें जिस प्रकरणको हम धर्म समझते हैं, उसके द्वारा हमें बतलाया जाता है कि संसारकी सृष्टि कैसे हुई, अपने धर्मावलम्बियोंको पहचाननेका क्या चिह्न है और हमारा नैतिक आचरण कैसा होना चाहिये। इस प्रकारकी शिक्षापर सभी जगह बहुत जोर दिया जाता है। इंग्लैण्डके १९वीं शताब्दीके जो नास्तिक वैज्ञानिक थे, वे भी अपने ईसाई धर्मग्रन्थ बाइबिलसे पूर्णरूपसे परिचय रखते थे। चाहे वे सृष्टिके सम्बन्धकी उसकी बातोंको मानें या न मानें, चाहे धर्मके बाह्य आचार-विचारोंका पालन करें या न करें, उसकी बतलायी नैतिकताके अनुसार ही वे आचरण करते थे। सब धर्मोंका मूल उद्देश्य यही है कि हमारा नैतिक व्यवहार ठीक रहे; क्योंकि इसीके द्वारा मनुष्य-मनुष्यका—परस्परका श्रेष्ठ सम्बन्ध बना रह सकता है। मनुष्य सामाजिक जन्तु है। वह अकेला नहीं रह सकता और समाजको ठीक प्रकारसे चलाना ही धर्मोंका प्रधान लक्ष्य है और इसी कारण यह धर्म और 'रैलिजन' दोनों ही शब्दोंका आधार है। उसका अर्थ यही है कि लोगोंको वह बाँधे रहे।

हमारे यहाँ धर्मका अत्यधिक व्यापक अर्थ होनेके कारण उसका प्रभाव मनुष्यके प्रत्येक पगपर और प्रत्येक काममें पड़ता है। हम सभी स्थितियोंमें लगातार अपनेसे कहते रहते हैं—अथवा अपनेसे कहते रहना चाहिये—'यह हमारा धर्म है'—इस कारण हमें करना चाहिये। 'यह अधर्म है'—इस कारण नहीं करना चाहिये। स्वराज्यके बाद हमने अपने देशमें 'लौकिक राज्य' (सेक्युलर स्टेट)-की स्थापना की। इसका कारण यही था कि एक तो धर्मके नामपर हमारे यहाँ बहुत झगड़े होते रहे, जिसके कारण देशका विभाजनतक हो गया। साथ ही, अपने देशमें धर्मके नामसे अनेक सम्प्रदाय हैं, जिन सबको ही हमको बराबर पद देना अभीष्ट था और जिन सबके ही अनुयायियोंको हम समान नागरिक मानना चाहते थे एवं जिन सबको ही हम समान कर्तव्य और अधिकारोंको प्रदान करना चाहते थे। ऐसी अवस्थामें हमने अपनेको 'धर्म-निरपेक्ष' राज्यका पद प्रदान किया और यह घोषित किया कि राज्यकी तरफसे किसी धर्म अथवा सम्प्रदायको विशिष्ट पद न दिया जायगा और न राज्यसे सहायता पानेवाली किसी संस्थामें किसी विशेष सम्प्रदायकी शिक्षा दी जायगी।

यहाँतक तो सिद्धान्तकी बात हुई, पर सिद्धान्त ही

पर्याप्त नहीं होता। उसके परिणामको भी देखना होता है। मनुष्य अपनी करनीसे परखा जाता है, कथनीसे नहीं। महात्मा गाँधीजी कहा करते थे कि 'प्रचार'से अधिक महत्त्व 'आचार'का है। अंग्रेजीमें कहते हैं कि 'उदाहरण' (एग्ज़ाम्पुल) 'उपदेश' (प्रिसेप्ट)-से अधिक अच्छा है। इस समय देशमें हर प्रकारके अनाचार, भ्रष्टाचार, अनुचित महत्त्वाकांक्षा आदिकी शिकायत हो रही है। सब लोग इससे परेशान हैं। सब लोग इसे जानते हैं, पर इसके उन्मूलनका कोई प्रकार नहीं बतला पाते। ऐसी दुर्भावना इतनी व्यापक हो गयी है कि उससे लज्जा न करके हम गर्व करने लगे हैं और यदि अनुचित कार्योंद्वारा कोई सफल हो जाता है तो वह अपनी स्थितिपर अभिमान तो रखता ही है, अन्य लोग भी उसको सम्मानका स्थान देते हैं और उसकी प्रशंसा करते हैं।

किसी दूसरे देश और कालमें यह स्थिति अशोभनीय समझी जाती या यदि किसी विदेशीको यह एकाएक बतलाया जाय तो वह विश्वास भी न करे कि ऐसा सम्भव है। पर ऐसी स्थिति वास्तवमें है, इसको कोई अस्वीकार नहीं कर सकता। अनुसन्धान करनेपर यही प्रतीत होता है कि हमें धार्मिक शिक्षा नहीं दी जाती। धर्मका पद जो हमारे घरोंमें, हमारी पाठशालाओंमें, हमारे व्यवसायोंमें, हमारे समाजमें था, अब नहीं रह गया। धर्मनिरपेक्ष राज्यके नामसे हमने धर्मको ही अपने जीवनसे हटा दिया। अवश्य ही यह कहा जायगा कि भौतिक (सेक्युलर) स्टेटका यह अर्थ नहीं है कि सब लोग ईश्वरको भुला दें या अपने-अपने सम्प्रदायोंके नैतिक आदेशोंके अनुसार न चलें। पर वास्तवमें हुआ यही है कि हम (हिन्दू तो) सारा सदाचार ही भूल गये हैं। मुसलमान, ईसाई और अन्य-धर्मावलम्बी अपनी सन्ततियोंको अपने धर्मके मूल सिद्धान्तोंको बतलाते हैं, उचित-अनुचितपर भी ध्यान दिलाते हैं। पर हिन्दू-समाज इतनी अनन्त जातियों, उपजातियों, सम्प्रदायों आदिमें विभक्त हो गया है कि उसमेंसे सारी धार्मिक भावनाएँ जाती रहीं। हिन्दुओंमें न आचारकी एकता है, न विचारकी एकता है। सबके ईश्वरोपासनाके प्रकार, समय आदि पृथक्-पृथक् हैं। यदि कोई इनका पालन न करे तो भी वह हिन्दू ही कहा जायगा, यदि उसका जन्म हिन्दू-कुलमें हुआ हो और उसने अपने धर्मको स्वयं ही छोड़ न दिया हो।

धार्मिक भावनाओंकी शिक्षा-दीक्षा न होनेके कारण धर्म-विपरीत आचरणोंका समाजकी तरफसे विरोध न होनेके कारण ही हमारी यह दुर्गति हो रही है। अनाचार, भ्रष्टाचार आदि तो तभी दूर हो सकते हैं, जब अनुचित कार्य करनेकी वासना होते हुए ही हम यह अनुभव करें और अपनेसे कहें कि 'यह अधर्म है, इसे नहीं करना चाहिये।' समाजका नैतिक स्तर भी तभी ऊँचा हो सकता है, जब अधिकतर लोग उसमें ऐसे हों, जो अनाचारी, भ्रष्टाचारीको अपनेसे अलग रखनेको उद्यत हों। हम मानते हैं कि सम्प्रदायविशेषोंमें स्रष्टा, अवतार, बाह्य चिह्न आदि जो बतलाये गये हैं, उनकी शिक्षा हम अपने सार्वजनिक संस्थाओंमें न दें; पर हमारा धर्मनिरपेक्ष राज्य भी भौतिकतापर जोर देता हुआ यह नहीं कहता और न यह कह सकता है कि हमें नैतिक और आध्यात्मिक शिक्षा भी न मिले। 'रेलिजन' और 'रेलिजस एजूकेशन' अर्थात् सम्प्रदाय और साम्प्रदायिक शिक्षाको हम चाहें तो दूर रखें, पर राज्यकी भी संस्थाओंमें हमें नैतिक और आध्यात्मिक शिक्षा तो मिलनी ही चाहिये, जिससे हम अच्छे और सच्चे नागरिक बन सकें। साथ ही यह भी आवश्यक है कि भिन्न-भिन्न सम्प्रदायोंके गृहस्थ अपनी सन्ततियोंको अपने सम्प्रदायविशेषके मौलिक सिद्धान्तोंको बतलायें और समझायें एवं नैतिकता तथा आध्यात्मिकतापर विशेष जोर दें, जिससे कि सब लोग यह मानने लगें कि सब धर्मोंके भौतिक आधार एक ही हैं, सबके लक्ष्य भी एक ही हैं और हमें परस्पर प्रेम और भ्रातृभावसे रहना चाहिये, जिससे कि हम अपने देशसे सब अनुचित आचार-विचारको दूर करें, देशको सुन्दर और उज्ज्वल बनायें और वास्तविक एकताकी स्थापना करके अपनी स्वतन्त्रताको अक्षुण्ण बनाये रखें।

श्रद्धापर एक दृष्टान्त

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

एक समय शिवजी महाराज पार्वतीके साथ हरिद्वारमें घूम रहे थे। पार्वतीने देखा कि सहस्रों मनुष्य गंगामें नहा-नहाकर 'हर-हर' करते चले जा रहे हैं; परंतु प्राय: सभी दुखी और पापपरायण हैं। पार्वतीने बड़े आश्चर्यके साथ शिवजीसे पूछा कि 'हे देवदेव! गंगामें इतनी बार स्नान करनेपर भी इनके पाप और दु:खोंका नाश क्यों नहीं हुआ? क्या गंगामें समर्थ्य नहीं रही?' शिवजीने कहा—'प्रिये! गंगामें तो वही सामर्थ्य है; परंतु इन लोगोंने पापनाशिनी गंगामें स्नान ही नहीं किया है, तब इन्हें लाभ कैसे हो?' पार्वतीने साश्चर्य कहा कि 'स्नान कैसे नहीं किया? सभी तो नहा-नहाकर आ रहे हैं? अभीतक इनके शरीर भी नहीं सूखे हैं।' शिवजीने कहा—'ये केवल जलमें डुबकी लगाकर आ रहे हैं। तुम्हें कल इसका रहस्य समझाऊँगा।' दूसरे दिन बड़े जोरकी बरसात होने लगी। गलियाँ कीचड़से भर गयीं। एक चौड़े रास्तेमें एक गहरा गड्ढा था, चारों ओर लपटीला कीचड़ भर रहा था। शिवजीने लीलासे ही वृद्ध-रूप धारण कर लिया और दीन-विवशकी तरह गड्ढेमें जाकर ऐसे पड़ गये, जैसे कोई मनुष्य चलता-चलता गड्ढेमें गिर पड़ा हो और निकलनेकी चेष्टा करनेपर भी न निकल सकता हो।

पार्वतीको यह समझाकर गड्ढेके पास बैठा दिया कि 'देखो! तुम, लोगोंको सुना-सुनाकर यों पुकारती रहो कि मेरे वृद्ध पति अकस्मात् गड्ढेमें गिर पड़े हैं, कोई पुण्यात्मा इन्हें निकालकर इनके प्राण बचाये और मुझ असहायकी सहायता करे।' शिवजीने यह और समझा दिया कि जब कोई गड्ढेमेंसे मुझे निकालनेको तैयार हो, तब इतना और कह देना कि 'भाई! मेरे पति सर्वथा निष्पाप हैं, इन्हें वही छुए जो स्वयं निष्पाप हो, यदि आप निष्पाप हैं तो इनके हाथ लगाइये, नहीं तो हाथ लगाते ही आप भस्म हो जायँगे।' पार्वती 'तथास्तु' कहकर गड्ढेके किनारे बैठ गयीं और आने-जानेवालोंको सुना-सुनाकर शिवजीकी सिखायी हुई बात कहने लगीं। गंगामें नहाकर लोगोंके दल-के-दल आ रहे हैं। सुन्दरी युवतीको यों बैठी देखकर कइयोंके मनमें पाप आया, कई लोक-लज्जासे डरे तो कइयोंको कुछ धर्मका भय हुआ, कई कानूनसे डरे। कुछ लोगोंने तो पार्वतीको यह भी सुना दिया कि मरने दे बुड्ढेको। क्यों उसके लिये रोती है? आगे और कुछ भी कहा, मर्यादा भंग होनेके भयसे वे शब्द लिखे नहीं जाते। कुछ दयालु सच्चरित्र पुरुष थे, उन्होंने करुणावश हो युवतीके पतिको निकालना चाहा; परंतु पार्वतीके वचन सुनकर वे भी रुक गये। उन्होंने सोचा कि हम गंगामें नहाकर आये हैं तो क्या हुआ, पापी तो हैं ही, कहीं होम करते हाथ न जल जायँ। बूढ़ेको निकालने जाकर इस स्त्रीके कथनानुसार हम स्वयं भस्म न हो जायँ। सुतरां किसीका साहस नहीं हुआ। सैकड़ों आये, सैकड़ोंने पूछा और चले गये। सन्ध्या हो चली। शिवजीने कहा—'पार्वती! देखा, आया कोई गंगामें नहानेवाला?'

थोड़ी देर बाद एक जवान हाथमें लोटा लिये 'हर-हर' करता हुआ निकला, पार्वतीने उससे भी वही बात कही। युवकका हृदय करुणासे भर आया। उसने शिवजीको निकालनेकी तैयारी की। पार्वतीने रोककर कहा कि 'भाई! यदि तुम सर्वथा निष्पाप नहीं होओगे, तो मेरे पतिको छूते ही जल जाओगे।' उसने उसी समय बिना किसी संकोचके दृढ़ निश्चयके साथ पार्वतीसे कहा कि 'माता! मेरे निष्पाप होनेमें तुझे सन्देह क्यों होता है? देखती नहीं मैं अभी गंगा नहाकर आया हूँ। भला गंगामें गोता लगानेके बाद भी कभी पाप रहते हैं? तेरे पतिको निकालता हूँ।' युवकने लपककर बूढ़ेको ऊपर उठा लिया। शिव-पार्वतीने उसे अधिकारी समझकर अपना असली रूप प्रकटकर उसे दर्शन देकर कृतार्थ किया। शिवजीने पार्वतीसे कहा कि 'इतने लोगोंमेंसे इस एकने ही गंगास्नान किया है।'

प्रार्थनाका स्वरूप

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)

प्रार्थना की नहीं जाती, अपितु स्वत: होती है। प्रार्थना ही प्रार्थीका स्वरूप है। प्रार्थना प्रार्थीको लक्ष्यसे अभिन्न करनेमें समर्थ है। प्रार्थना वास्तविकताका आदर करनेसे स्वत: जाग्रत् होती है। मृत्युके भयसे भला कौन मानव भयभीत नहीं है? अभय होनेकी माँग मानवमात्रमें स्वभावसे विद्यमान है। मृत्युके भयसे रहित करनेमें कोई परिस्थिति हेतु नहीं है। इस कारण सभी परिस्थितियोंके आश्रय तथा प्रकाशकी ओर दृष्टि स्वत: जाती है। मानव कह बैठता है—'कोई ऐसा होता, जो मुझे अभय-दान देता।' अत: भयहारीमें आस्था स्वत: होती है। आस्थाकी पूर्णतामें ही श्रद्धा तथा विश्वास निहित है। श्रद्धा-विश्वासपूर्वक भयहारीको स्वीकारकर अभय होनेकी तीव्र माँग ही वास्तविक प्रार्थना है।

यह सभीको विदित है कि कामनापूर्ति कर्मसापेक्ष तथा निष्कामता विवेकसिद्ध है। किंतु कर्म-सामग्री कर्ताको किसी विधानसे मिली है। मिली हुई वस्तुको व्यक्तिगत मान लेना और दाताको स्वीकार न करना 'प्रमाद' है। इस प्रमादकी निवृत्ति आये हुए दु:खके प्रभावसे स्वत: होती है और फिर दुखी—'हे दु:खहारी!' पुकारने लगता है। भला, इस सत्यको कौन नहीं अपनायेगा? सुखकी दासता तथा दु:खके भयके रहते हुए सभी प्रार्थी हैं। इस दृष्टिसे मानवमात्र प्रार्थी हैं। अब विचार यह करना है कि हमारी माँगमें वास्तविकताका अनादर तो नहीं है? अर्थात् विवेकविरोधी माँग तो नहीं है? दु:खके अभावसे ही सुखका प्रलोभन नाश होता है और फिर स्वत: दुखी दु:खहारीसे अभिन्न होता है। यह मंगलमय विधान है। दु:खका मूल भूल है अथवा यों कहो कि भूल मिटानेके लिये दु:खके वेषमें दु:खहारी ही आते हैं और सुखके प्रलोभनको खाकर दुखीको अपनाकर योग, बोध, प्रेमसे अभिन्न कर देते हैं।

भूलका कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है। निज ज्ञानका अनादर, मिली हुई स्वाधीनताका दुरुपयोग तथा दैवी गुणोंको व्यक्तिगत मान लेना ही तो भूल है। भूलजनित वेदनामें ही प्रार्थना निहित है। प्रार्थनासे मानवमात्रका सर्वतोमुखी विकास होता है। इतना ही नहीं, पुरुषार्थकी परावधि एकमात्र प्रार्थनामें ही निहित है। मिली हुई वस्तु, योग्यता, सामर्थ्य आदिका सदुपयोग पुरुषार्थका सदुपयोग है। मिले हुएको अपना मानना भूल है। जिसने दिया है, वह अपना है। मानव प्रमादसे उन्हें भूल जाता है, जो सदा-सदासे अपने हैं और परिवर्तनशील, उत्पत्ति-विनाश-युक्त वस्तु, अवस्था, परिस्थिति आदिको अपना मान लेता है। वे कितने अपने हैं कि सब कुछ देनेपर भी भास नहीं होने देते कि मैं दाता हूँ? वे कितने उदार हैं कि उनको स्वीकार बिना किये भी वास्तविक माँगको पूरा करते हैं। उन्हींके प्रकाशमें चराचर जगत् प्रार्थी है। प्रार्थी अपनी माँगसे अभिन्न हो जाता है। यह दाताकी महिमा है। स्तुति और उपासना प्रार्थनामें ही निहित हैं। प्रार्थनाकी पूर्तिमें ही स्तुति उदय होती है। प्रार्थना स्वत: सर्वसमर्थसे सम्बन्ध जोड़ देती है। यही तो उपासना है। प्रार्थना उससे सम्बन्ध जोड़ देती है, जिसे प्रार्थी नहीं जानता, अपितु जो प्रार्थीको जानता है।

सन्देहकी वेदना होनेपर जिज्ञासाके रूपमें प्रार्थना ही अभिव्यक्त होती है। ज्यों-ज्यों जिज्ञासा सबल तथा स्थायी होती जाती है, ज्यों-त्यों सभी निर्बलताएँ स्वत: नष्ट होती जाती हैं। जिस कालमें जिज्ञासासे भिन्न जिज्ञासुका कोई और अस्तित्व ही नहीं रहता, उसी कालमें जिज्ञासाकी पूर्ति स्वत: हो जाती है अर्थात् जिज्ञासु तत्त्वज्ञानसे अभिन्न हो जाता है, यह प्रार्थनाकी ही महिमा है। पुरुषार्थ 'अहं'को पोषित करता है और प्रार्थना 'अहं'को खाकर प्रार्थीको लक्ष्यसे अभिन्न करती है। इतना ही नहीं, पुरुषार्थी पुरुषार्थके आरम्भसे पूर्व प्रार्थी होता है। कारण कि सामर्थ्यके सदुपयोगसे भिन्न पुरुषार्थ कुछ नहीं है। सामर्थ्यकी माँग भी तो प्रार्थना ही है। इस दृष्टिसे प्रार्थनासे ही जीवनका आरम्भ होता है और प्रार्थनासे ही पूर्णता प्राप्त होती है।

प्रार्थना प्रार्थीकी सभी निर्बलताओंका अन्त कर

निर्दोषतासे अभिन्न करती है। इतना ही नहीं, प्रार्थनासे प्राप्त निर्दोषता साधकको गुणोंके अभिमानसे रहित कर देती है। अत: सर्वांशमें दोषोंका अन्त एकमात्र प्रार्थनासे ही साध्य है।

प्रत्येक संकल्प-पूर्तिका सुख नवीन संकल्पको जन्म देता है और अन्तमें संकल्प-अपूर्ति ही शेष रहती है। इस दृष्टिसे सुख और दु:खमें आबद्ध प्राणी शान्ति नहीं पाता। यद्यपि शान्ति, स्वाधीनता एवं सरसता आदिकी माँग मानवमें बीज-रूपसे विद्यमान है, उस विद्यमान माँगको विकसित करना ही प्रार्थना है। प्रार्थना शरीर-धर्म नहीं है, अपितु मानवका स्वधर्म है। प्रार्थनाका प्रभाव शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि आदिपर होता है। इस कारण प्रत्येक मानव प्रत्येक परिस्थिति प्रार्थना करनेमें स्वाधीन और समर्थ है अर्थात् प्रार्थनासे भिन्न मानवका अस्तित्व नहीं है; किंतु जब मानव अपनी स्वाभाविक माँगको भूलजनित कामनाओंसे शिथिल कर देता है, तब उसे प्रार्थना करनी पड़ती है। वास्तविक माँगके लिये की हुई प्रार्थना वर्तमानमें फलवती होती है। कारण कि प्रार्थना वास्तविकतासे दूरी, भेद, भिन्नता नहीं रहने देती। प्रार्थना मौजूदकी होती है और मौजूदसे होती है। भक्तोंका भगवान्, जिज्ञासुओंका तत्त्वज्ञान, योगियोंका योग नित्य-प्राप्त है। अत: प्रार्थी बड़ी ही सुगमताके साथ मानव-जीवनके चरम लक्ष्यको प्राप्त कर लेता है।

जो सदैव सभीका अपना है, जिसे मानव भले ही स्वीकार करे अथवा न करे, किंतु मानवकी माँग अर्थात् प्रार्थना किसी-न-किसी रूपमें स्वत: होती है। पर यह रहस्य तभी स्पष्ट होता है, जब मानव शान्त होकर अपनी ओर देखे। अपनी ओर देखनेसे अपनी वर्तमान दशाका, वास्तविक माँगका तथा अपनी भूलका स्वत: ज्ञान होता है, जिसके होते ही अपने-आप प्रार्थनाका उदय होता है, जो प्रार्थीको भूलरहित करके प्रार्थीसे अभिन्न कर देती है। प्रार्थना आस्तिकवादकी दृष्टिसे प्रीतिसे भिन्न कुछ नहीं है और अध्यात्मवादकी दृष्टिसे प्रार्थना ही प्रार्थीको असंगता प्रदान करती है। भौतिकवादकी दृष्टिसे प्रार्थना प्रार्थीको विश्व-जीवनके साथ अभिन्न करती है। इस दृष्टिसे प्रार्थना प्रेम होकर प्रेमास्पदसे, असंगता होकर निज स्वरूपसे और उदारता होकर विश्वसे अभिन्न करती है। यह निर्विवाद सत्य है।

बोध-कथा—

जगत्का स्वरूप

एक बड़ा सुन्दर मकान है। उसके नीचे अनाजकी दूकान है। दूकानके सामने अनाजकी ढेरी लगी है। एक बकरा आया। उसने ढेरीपर मुँह मारा। दूकानका मालिक एक तरुण धनी दूकानपर बैठा था। उसके हाथमें नुकीली छड़ी थी। उसने बकरेके सिरपर जोरसे छड़ी मार दी। बकरा में-में करता हुआ भागा।

श्रीनारदजी तथा श्रीअंगिराजी अपनी राह जा रहे थे। बकरेकी उपर्युक्त घटना देखकर नारदजीको हँसी आ गयी। अंगिराजीने इस हँसीका रहस्य पूछा। तब नारदजीने बताया कि 'यह अनाजकी दूकान पहले बहुत छोटी थी। इसके मालिकने इसी दूकानसे अपने व्यापारकी प्रतिष्ठा की। वह अन्तमें करोड़पति हो गया। उसीने यह इतनी बड़ी इमारत बनवायी। वह बहुत बड़े-बड़े व्यापार करने लगा। परंतु अनाजकी बुनियादी दूकानको अपने रहनेके मकानके नीचे ही रखा; क्योंकि इसी दूकानसे उसकी क्रमश: उन्नति हुई थी। मालिक मर गया। उसका बेटा उत्तराधिकारी हुआ। वही तरुण दूकानपर बैठा है, जिसने बकरेको छड़ीसे मारकर भगाया है। यह इस दूकानपर रोज घंटे भर आकर बैठता है। काम-काज तो नौकर करते हैं। मुझे हँसी इस बातपर आ गयी कि दूकानका वह मालिक—इस तरुणका पिता ही बकरेकी योनिमें पैदा हुआ है। यही एक दिन इस दूकानका, मकानका और सारे करोबारका मालिक था; पर आज एक मुट्ठी अनाजपर भी उसका अधिकार नहीं है। अनाजकी ओर मुँह करते ही मार पड़ती है और जिस पुत्रको बड़े प्यारसे पाला-पोसा, वही मारता है। यही है जगत्का स्वरूप!'

साधकोंके प्रति—

कल्याणका निश्चित उपाय

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

भगवान्‌ने जीवपर कृपा करके उसको अपना कल्याण करनेके लिये ही मनुष्यशरीर दिया है। अपना कल्याण करनेके सिवाय मनुष्यजन्मका दूसरा कोई प्रयोजन है ही नहीं। शरीर, धन-सम्पत्ति, जमीन-मकान, स्त्री-पुत्र आदि जितनी भी सांसारिक वस्तुएँ हैं, वे सब-की-सब मिलने और बिछुड़नेवाली हैं। अतः कोई कितना ही बड़ा धनवान् बन जाय, बलवान् बन जाय, ऊँचे पदवाला बन जाय, बड़े कुटुम्बवाला बन जाय, पर अपने कल्याणके बिना ये सब-की-सब वस्तुएँ अपने कुछ काम न आयेंगी। बिना दूल्हेकी बारातकी तरह सम्पूर्ण सांसारिक भोग व्यर्थ हैं। इसलिये मनुष्यका खास कर्तव्य है—अपना कल्याण करना।

एक मार्मिक बात है कि अपना कल्याण करनेमें मनुष्यमात्र सर्वथा स्वतन्त्र है, समर्थ है, योग्य है, अधिकारी है। कारण कि भगवान् जीवको मनुष्यशरीर देते हैं तो उसके साथ ही अपना कल्याण करनेकी स्वतन्त्रता, सामर्थ्य, योग्यता और अधिकार भी प्रदान करते हैं।

अब प्रश्न उठता है कि मनुष्य अपना कल्याण करनेके लिये क्या करे? इसका उत्तर है कि यदि मनुष्य इन चार बातोंको दृढ़तासे स्वीकार कर ले तो उसका कल्याण हो जायगा—

१-मेरा कुछ भी नहीं है।

२-मेरेको कुछ भी नहीं चाहिये।

३-मेरा किसीसे कोई सम्बन्ध नहीं है।

४-केवल भगवान् ही मेरे हैं।

मिलने और बिछुड़नेवाली वस्तुओंको अपना मानना मूल दोष है, जिससे सम्पूर्ण दोषोंकी उत्पत्ति होती है। वास्तवमें अनन्त ब्रह्माण्डोंमें केश-जितनी वस्तु भी अपनी नहीं है। इसलिये 'मेरा कुछ भी नहीं है'—ऐसा स्वीकार करनेसे जीवनमें निर्दोषता आ जाती है। निर्दोषता आते ही मनुष्य धर्मात्मा हो जाता है।

जब मेरा कुछ है ही नहीं, तो फिर हम किस वस्तुकी चाहना करें? अतः 'मेरेको कुछ भी नहीं चाहिये'—ऐसा स्वीकार करते ही जीवनमें निष्कामता आ जाती है। निष्कामता आते ही मनुष्य योगी हो जाता है अर्थात् उसको समत्वरूप योगकी प्राप्ति हो जाती है—'**समत्वं योग उच्यते**' (गीता २।४८)। कोई भी कामना न होनेसे उसको चित्तवृत्तिनिरोधरूप योगकी भी प्राप्ति हो जाती है—'**योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः**' (योगदर्शन १।२)।

मनुष्यमात्रका स्वरूप स्वतः असंग है—'**असङ्गो ह्ययं पुरुषः**' (बृहदा० ४।३।१५)। अतः मिलने और बिछुड़नेवाले किसी भी वस्तु-व्यक्तिके साथ अपना सम्बन्ध न माननेसे मनुष्यको अपनी असंगताका अनुभव हो जाता है। असंगताका अनुभव होनेपर वह ज्ञानी हो जाता है।

जीवमात्र परमात्माका अंश है—'**ममैवांशो जीवलोके**' (गीता १५।७)। भगवान्‌का अंश होनेके नाते केवल भगवान् ही हमारे हैं। भगवान्‌के सिवाय दूसरा कोई हमारा नहीं है। इस प्रकार भगवान्‌में अपनापन स्वीकार करते ही मनुष्य भक्त हो जाता है।

धर्मात्मा, योगी, ज्ञानी और भक्त होनेमें ही मनुष्यका कल्याण निहित है। ऐसा होनेमें कठिनाई भी नहीं है; क्योंकि वास्तवमें मनुष्यमात्रका स्वरूप स्वतः निर्दोष, निष्काम, असंग और भगवान्‌का अंश है। तात्पर्य है कि हमारा स्वरूप सत्तामात्र है। उस सत्तामें निर्दोषता, निष्कामता और असंगता स्वतःसिद्ध है और वह सत्ता भगवान्‌का अंश है। इसलिये साधकका कर्तव्य है कि वह उपर्युक्त चारों बातोंको दृढ़तासे स्वीकार कर ले। फिर उसका कल्याण निश्चित है।

मानवीय मूल्योंकी स्थापनामें अध्यात्मकी भूमिका

(श्रीश्यामसुन्दरजी मिश्र)

साहित्य मनुष्यको मनुष्य बनाये रखनेमें महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। उसकी अन्तरात्माको निखारकर तेजोमय एवं शान्तिमय बनाता है। बशर्ते साहित्यको विकृतकर न परोसा गया हो, जैसा कि आजकल हो रहा है। दरअसल, साहित्य ज्ञानके उस भण्डारको कहते हैं, जो मानवोचित गुणोंमें निरन्तर वृद्धि करता है और उसके ह्रासको रोकता है। दुर्भाग्यका विषय है कि आज साहित्यको मनोरंजनतक सीमित कर लिया गया है। मनोरंजन भी यदि स्वस्थ हो तो ग्राह्य है; क्योंकि स्वस्थ मनोरंजनसे मनकी ग्रन्थियाँ खुलती और विकृतियाँ नष्ट होती हैं, किंतु आज तो विकृत साहित्य और विकृत मनोरंजनोंकी बाढ़-सी आ गयी है। फलस्वरूप इंसान हैवानियतकी ओर उन्मुख हो रहा है। अपने निजी स्वार्थ और आनन्दके लिये वह रिश्तोंको तार-तार करनेमें लगा है। लोगोंका एक-दूसरेपरसे विश्वास उठने लगा है। बाप-बेटे, माँ-बाप, भाई-बहन तथा गुरु और शिष्यके रिश्ते भी कलंकित होने लगे हैं। हर कोई एक-दूजेसे भयभीत है। सम्बन्ध अत्यन्त सीमित होकर रह गये हैं। आत्मीयता स्वप्नवत् हो चली है और आत्मीयताके अभावमें इंसान सच्चे सुख और शान्तिका अनुभव कर ही नहीं सकता।

हाड़-मांसके इस शरीरको भौतिक सुखोंकी अनन्त लालसा होती है, किंतु भौतिक सुख तबतक तृप्ति नहीं प्रदान कर सकते, जबतक वह आत्माको आनन्दित न कर लें। यह हमारा दुर्भाग्य ही है कि हम भौतिक उपलब्धियोंको ही सुखका स्रोत मान बैठे हैं और उन उपलब्धियोंके लिये विज्ञान और टेक्नोलॉजीके उच्चसे उच्च आयाम तो तय कर रहे हैं, किंतु जो आत्माको तृप्त कर सके, उससे कोसों दूर जा रहे हैं। जबतक शरीर और आत्मा दोनोंको आनन्द नहीं प्राप्त होगा, कोई भी सुख तृप्ति और शान्ति प्रदान नहीं कर सकता। भला, न्यायिक सुख स्थायित्व कैसे प्रदान कर सकते हैं? वह अपने बाद बेचैनीका सृजन कर जाते हैं और जो इंसानको अस्थिर तथा उसके मनमें पुनः उस सुखके लिये तड़पन छोड़ जाते हैं। यूँ तो मनको शरीरका एक हिस्सा कहा जा सकता है, लेकिन दोनोंकी खुराक अलग है। शरीरको भौतिक सुखोंकी चाह होती है और मनको शान्तिकी। जबतक सुख और शान्ति दोनोंका समन्वय नहीं होगा, पूर्णतः शान्ति प्राप्त नहीं होगी और आज यही हो रहा है। हमने शरीरके लिये भौतिक सुखोंका आधार लगा रखा है, पर मनकी शान्तिके लिये कुछ भी करना आवश्यक नहीं मानते।

हमारा आदिसनातन धर्म मनकी शान्तिको प्राथमिकता देता है, फिर शारीरिक सुखोंकी बात करता है। हमारे ऋषि-महर्षि जंगलोंमें एकान्तवासकर गहन चिन्तन करते थे और मनकी शान्ति तथा परमआनन्दकी खोज करते थे। उन्होंने जान लिया था कि परमात्माने हमारी मानव देहको विलक्षण शक्तियोंसे परिपूर्ण कर रखा है, जिसके बलपर हम भौतिक और आध्यात्मिक दोनों ही सुखोंको पूर्णतः प्राप्त कर सकते हैं। उन्होंने अपनी साधना अर्थात् रिसर्चके बाद अपने अनुभवोंको ग्रन्थोंके रूपमें हमें समर्पित किया, जो वेद और पुराणोंके रूपमें हमारी अमूल्य धरोहर है। वेदोंसे ही टेक्नोलॉजी, खगोलशास्त्र, अर्थशास्त्र, पाकशास्त्र, आयुर्वेद, गन्धर्व-विद्या और कामशास्त्र आदिकी उत्पत्ति हुई, जिसके चलते इंसान भौतिक सुखोंके अमूल्य खजानेको प्राप्त करनेमें सक्षम हो सका। साथ ही उन्होंने मनकी शान्तिके लिये अध्यात्म और मानवतासे परिपूर्ण अनेक ग्रन्थोंकी रचना भी की, जिससे इंसान पूर्णताको प्राप्त हो सके। भगवद्गीतामें आत्मा और परमात्माका शाश्वत सम्बन्ध बताते हुए उस परमतत्त्वकी कण-कणमें व्याप्ति प्रतिपादित की गयी है, तो रामायणमें मानवके लौकिक जीवनको सुखमय बनानेहेतु कार्य और व्यवहारका विशद विवेचन किया गया है। ज्ञानके ये अक्षय भण्डार हमारे लौकिक

एवं पारलौकिक दोनों जीवनको धन्य बनानेमें सक्षम हैं। हमें शारीरिक और मानसिक सुख प्रदानकर शरीर एवं मन—दोनोंको तृप्त करनेका स्रोत हैं।

हमारी विडम्बना यह है कि हमने शरीर और मन दोनोंको एक मान लिया है और शारीरिक सुखोंमें ही मनकी तृप्ति खोजते फिर रहे हैं, जो कि असम्भव है। इसीलिये हम असीम वैभव प्राप्त करके भी अतृप्त ही रहते हैं। एक अजीब-सी तड़पन हमें अशान्त किये रहती है। इससे निजात पानेके लिये विज्ञानके साथ आध्यात्मको भी जोड़ना होगा। ज्ञान और विज्ञान दोनों ही एक-दूसरेके बिना अधूरे हैं। ज्ञान अर्थात् परमतत्वका ज्ञान, आत्मा और परमात्माका ज्ञान, इंसान और इंसानियतका ज्ञान, वेदना और संवेदनाका ज्ञान और विज्ञान अर्थात् भौतिक उपलब्धियोंका अम्बार, जिनसे समस्त दैहिक सुख प्राप्त होते हैं। अत: ज्ञान और विज्ञान दोनोंका समन्वय ही तन और मन दोनोंको पूर्ण सुख और शान्ति प्रदान कर सकता है। किंतु विकासकी अन्धी दौड़में हम साहित्यसे दूर होते जा रहे हैं। भौतिक उपलब्धियोंकी चकाचौंधमें साहित्य लुप्त होता जा रहा है। अध्ययनके अभावमें हम अपने मनीषियोंद्वारा प्रदत्त दुर्लभ ज्ञानसे वंचित होकर जीवनमें अशान्ति और कुण्ठाओंको आमंत्रित कर रहे हैं।

आज विज्ञानकी जिन बुलन्दियोंपर हम इतना इठला रहे हैं, उसका उद्‌गम हमारे आदिग्रन्थ वेद ही तो हैं, जिनकी बदौलत रामायण और महाभारतकालका विज्ञान हमसे सैकड़ों गुना उच्च एवं परिष्कृत था। आज तो अनेक अन्तरिक्ष यान प्रक्षेपणके साथ नष्ट हो जाते हैं। मिसाइलें पथभ्रष्ट हो जाती हैं, किंतु उस कालमें चलाया गया ब्रह्मास्त्र शत्रुका पीछा तीनों लोकोंतक करके उसका विनाश कर डालता था अथवा सम्पूर्ण सृष्टिके विनाशकी क्षमता रखता था। सुदर्शन चक्र-जैसे अस्त्र शत्रुका विनाशकर पुन: श्रीकृष्णके पास लौट आते थे। ऋषिवर नारद अदृश्य होकर तीनों लोकोंका भ्रमण करते रहते थे। आज हम मृत्युलोकतक ही सीमित होकर रह गये हैं। दूसरे लोकोंमें जीवनकी कल्पनामात्र ही कर रहे हैं, जबकि चक्रवर्ती सम्राट् दशरथ इन्द्रके आमन्त्रणपर पृथ्वीलोकसे महारानी कैकेयीको साथ लेकर देवासुर-संग्राममें देवताओंकी मददहेतु सदेह पहुँच गये थे। आजका विज्ञान कई मायनोंमें उनसे तुच्छ है। उसका एकमात्र कारण है कि हमने अध्यात्मसे मुँह मोड़ लिया है। वेद-पुराण, गीता-रामायण-जैसे ग्रन्थ सर्वोपरि हैं। सच कहा जाय तो अध्यात्म और साहित्यके अभावमें हम मात्र रोबोट बनकर रह गये हैं। एक मशीनी मानव, जो शारीरिक क्रियाएँ तो कर सकता है, पर उसके पास मन नहीं होता। अत: वह संवेदनहीन ही रहता है। हाड़-मांसके मनुष्य शरीरमें आत्मामें अतुलनीय ऊर्जा होती है, उसकी तुष्टि संवेदनाओंके अभावमें सम्भव ही नहीं। आज हमने अध्ययनको आर्थिक और भौतिक उपलब्धियोंतक सीमित कर लिया है। उस साहित्यसे दूर भागते हैं, जो चिन्तनके लिये मजबूर करता है। विचार करिये ऋषि-मुनियोंने गहन-चिन्तनके बाद जो ग्रन्थ लिखे, क्या उनके गूढ़ अर्थ सरसरी तौरपर अध्ययनसे हमारे मन-मस्तिष्कमें पैठ सकते हैं? नहीं, कभी नहीं; और आज यही हो रहा है। हम उनकी उँगली पकड़कर चले तो, पर जब चलनेलायक हुए तो उँगली छोड़कर दो कदम ही चलनेपर स्वयंको पूर्ण मान बैठे और निजी शोधमें लग गये। जरा सोचिये, ऋषि-मुनि तो योगबलसे सैकड़ों साल जीवित रहकर चिन्तन और शोध करते थे। आज इंसानकी उम्र ही क्या है? एक वैज्ञानिककी मृत्युके बाद दूसरा उसके सिद्धान्तोंको आगे बढ़ाता है। जाहिर-सी बात है कि वह पूर्ववर्तीके भावोंपर पूरी तरह नहीं चल सकता। उसकी सोचमें कहीं-न-कहीं भिन्नता तो होगी ही। बस, इसी कारणसे हम आज भी उस पूर्णताको नहीं प्राप्त कर सके हैं, जो अपेक्षित है। अत: वैज्ञानिकोंको अपना दर्प छोड़कर पुन: वेद और शास्त्रोंको खँगालना होगा, उनपर गहन चिन्तन करना होगा। मानवीय मूल्योंकी स्थापनाहेतु हर व्यक्तिको सद्‌ग्रन्थोंका अध्ययन करना होगा। सत्साहित्यके अभावमें न तो हम मनुष्य कहलानेयोग्य रह जायँगे, न ही शान्तिको प्राप्त कर सकेंगे, जो शारीरिक सुखोंको पूर्णता प्रदान करती है।

हर देशमें तू, हर वेशमें तू

(श्रीमती कमलजी राठी 'साधन')

हम बचपनसे यह स्तुति, प्रार्थना सुनते आ रहे हैं—***हर देशमें तू, हर वेशमें तू, तेरे नाम अनेक तू एक ही है—तेरे नाम अनेक तू एक ही है।*** हमारे यहाँ अनेकतामें एकता है, न सिर्फ मनुष्य बल्कि पशु-पक्षी, पर्वत, नदियाँ, पेड़-पौधे सबमें हमने उस परम तत्त्वको देखा है, उसका दर्शन किया है, उसकी पूजा की है और समय-समयपर यह बात सिद्ध भी हुई है। गंगा मैया, राजा भागीरथके बुलानेपर धरतीपर अवतरित हुईं। उनके पूर्वजोंका उद्धार कर दिया। जलरूपमें वे ब्रह्मद्रव हैं, पतितपावनी हैं। वहीं कर्माबाईके बुलानेपर प्रभु उनकी खिचड़ी खाने स्वयं पधारते थे, तो वहीं उन्होंने अपने स्पर्शसे पत्थरकी शिलाको अहल्या बना दिया—***'परसत पद पावन सोक नसावन प्रगट भई तप पुंज सही'***। यह है हमारी आस्था! विभिन्नरूपोंमें होते हुए भी वे परमात्मप्रभु एक ही हैं।

वैसे ही हमारे यहाँ 'आराधना'के विभिन्न स्वरूप हैं, कहीं ज्ञान-ध्यानसे आराधना, तो कहीं मूर्तिरूपमें साकार, तो कहीं अद्वैत निराकाररूपमें। सृष्टि उसीका विलासमात्र है। कहीं द्वैत देखते हुए मीरा, चैतन्यमहाप्रभु, नृसिंह मेहताने प्रभुको पाया है—तो कहीं दासभावसे, कहीं सखाभावसे तो कहीं लालाको वात्सल्यभावसे गोदमें खिलाया है। अभीकी स्थितिकी बात करें तो, नरको नारायण समझ डॉक्टर, वैज्ञानिक, सेवाकर्मी, सामाजिक कार्यकर्ता दिन-रात सेवा-यज्ञमें कर्मरूपी आहुतियाँ डाल रहे हैं।

प्रभुने स्वयं कहा है—यह सृष्टि भी मैं हूँ, सृष्टिकर्ता भी मैं ही हूँ। ताप भी मैं हूँ, बादल (बरसात) भी मैं ही हूँ, यानी सर्वत्र प्रभु-ही-प्रभु हैं, फिर क्यों व्यक्ति-व्यक्तिमें भेद, धर्ममें भेद, सम्प्रदायमें भेद—यह सब भेद विभिन्नताके लिये नहीं, बल्कि व्यक्तिविशेषकी रुचि एवं उसके अधिकारके कारण हैं।

अध्यात्ममें अनेकताके साथ एकताका सुन्दर उदाहरण देखनेको मिलता है—ठाकुर यानी रामकृष्ण परमहंसने न कोई औपचारिक शिक्षा ली, न किसी स्कूल गये, न ही किसी शास्त्रका अध्ययन किया, फिर भी ज्ञानमें परमहंसकी उपाधिसे अलंकृत! हम सब जानते हैं, ठाकुर कालीके अनन्य भक्त थे। माँ कालीसे उनकी प्रत्यक्ष बातचीत थी। वे हर काम उनकी आज्ञा—उनकी सलाहसे ही करते थे, कहते हैं—यहाँतक कि माँ काली ठाकुरके हाथसे भोजन भी करती थीं। उनके जीवन-चरित्रमें आता है, बाबा तोतापुरी उन्हें वेदान्त यानी अद्वैत ज्ञानका उपदेश देने आये—उनका जवाब था, माँसे आज्ञा लेकर बताऊँगा। दूसरे दिन नियमानुसार माँके भी विग्रहके सामने खड़े होकर पूछते हैं, माँ! नागा बाबा आते हैं शिक्षा देने, माँका जवाब था, मैंने ही उन्हें यहाँ आनेके लिये प्रेरित किया है, मेरे कहनेसे ही वे यहाँ आ रहे हैं। विचारकी बात है, ठाकुर स्वयं सर्वोच्च उपाधिसे अलंकृत, माँ कालीके परमभक्त और माँने ही व्यवस्था कर दी, अद्वैत ज्ञानकी। चेतनाकी जागृति इतनी कि नरेन्द्रके सिरपर हाथ रखते ही 'नरेन्द्र'से 'विवेकानन्द' बन गये, अनुभव ठाकुरका और अभिव्यक्ति विवेकानन्दद्वारा। हम सब जानते हैं विदेशमें दिया गया उनका सर्वप्रसिद्ध भाषण। वहाँ एक व्यक्तिने उनसे प्रश्न किया, आप हिन्दुओंमें इतने भगवान् क्यों हैं? उनका जवाब सुनिये—उनका कहना था 'मेरे विचारसे यह भी कम है, हमारी इतनी जनता है, हर एक व्यक्तिके अपने मौलिक विचार हैं, अपनी सोच है, उसके अनुसार ही उनकी अभिव्यक्तिके लिये भगवान्‌की अलग-अलग छवि होनी चाहिये।

यह है हमारी संस्कृति, हम सबके साथ हैं, पर अपनी आस्थाके खूँटेसे बँधे सहज, सरल प्रवाहमें चल रहे हैं, जिस तरह समुद्र अपनी मर्यादामें बहते हुए, अपने किनारोंको संयमित रखता है।

मूल सत्य एक ही है, जिसे बुद्धिमन् अनेक नामोंसे बुलाते हैं—**'एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति।'**

शंख-महिमा

(श्रीशंकरलालजी माहेश्वरी)

कहा जाता है कि जो भी प्राणी भगवान् शिवके डमरूका ब्रह्मनाद सुन लेता है, वह भवसागरको पार कर जाता है। उसके समस्त पापोंका नाश हो जाता है। संसार-सागरसे वह मुक्ति प्राप्त करता है। जगज्जननी माँ पार्वती भगवान् शिवसे पूछती हैं कि हे जगन्नियन्ता! इस कलियुगमें ब्रह्मनाद कैसे सुना जा सकता है, तब भगवान् शिव प्रसन्न मुद्रामें हँसते हुए कहते हैं कि 'कलियुगमें सच्चे मनसे निष्ठापूर्वक और भावपूर्ण तरीकेसे शंखध्वनि सुननेका प्रयास करे, तो शंखसे ब्रह्मनादका श्रवण सम्भव है। कलिकालमें शुद्धात्मासे परिपूर्ण होकर शुद्ध मन और चेतनापूर्वक किये गये शंखनादकी ध्वनि सुननेमात्रसे सांसारिक दु:खोंका निवारण हो जाता है।'

धार्मिक दृष्टिसे ही शंखनादकी महत्ता नहीं है, अपितु इसका सांस्कृतिक महत्त्व भी है। स्वास्थ्यवर्धनके लिये शंखनाद बड़ा उपयोगी है।

शंख कई प्रकारके होते हैं। दक्षिणावर्ती शंख, साधनोपयोगी शंख, गणेश शंख आदि। प्रत्येकका भिन्न-भिन्न महत्त्व है। सम्पन्नता, सुख-समृद्धि, आत्म-शान्ति और पर्यावरण तथा वायुमण्डलके शुद्धिकरणहेतु भी शंखकी महिमा मानी गयी है।

पौराणिक समयमें देवी-देवता अपने पास शंख रखते थे। महाभारत कालमें तो प्रत्येक योद्धाका अपना शंख होता था। पांचजन्य कृष्णका और देवदत्त अर्जुनका शंख है। श्रीमद्भगवद्गीतामें वर्णन है—

पाञ्चजन्यं हृषीकेशो देवदत्तं धनञ्जयः।
पौण्ड्रं दध्मौ महाशङ्खं भीमकर्मा वृकोदरः॥
अनन्तविजयं राजा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः।
नकुलः सहदेवश्च सुघोषमणिपुष्पकौ॥

जिस परिवारमें दक्षिणावर्ती शंखकी पूजा की जाती है, वह परिवार सदा सुखी और सम्पन्न रहता है। वहाँ धनकी कभी कमी नहीं रहती है। दक्षिणावर्ती शंखको सफेद कपड़ेमें लपेटकर काठके बर्तन या टोकरीमें रखते हैं। अथवा सफेद कपड़ेसे बने हुए आसनपर रखा जाता है। दूध-चावलसे पूजा की जाती है। इसका तान्त्रिक महत्त्व भी है। आसुरी शक्तियाँ इससे काफी दूर रहती हैं। इसीलिये तान्त्रिक लोग दक्षिणावर्ती शंखकी पूजा करते हैं। दक्षिणावर्ती शंखका मुँह दायीं ओर खुलता है। यह शंख अत्यधिक दुर्लभ है। यह शंख सामान्यत: सफेद रंगका ही उपलब्ध होता है। कभी-कभी नीलाभ रंगका शंख मिल जाय तो उसपर हलके भूरे रंगकी धारियाँ होती हैं। मातेश्वरी लक्ष्मीको यह शंख प्रिय है; क्योंकि दोनोंका जन्म समुद्रसे हुआ है। अत: शंख लक्ष्मीका सहोदर भाई है। विशेष पर्व एवं त्योहारोंपर इसका पूजन होता है।

मोती शंखकी विशेषता है कि वह गोल आकारका होता है। इसमें एक सफेद धारी होती है, जो ऊपरसे नीचेतक खींची होती है। यह मोतीकी तरह चमकदार होता है। व्यक्तिको संन्यासी बनानेमें इसका विशेष प्रभाव रहता है। योग और ध्यानके लिये यह शंख महती भूमिकाका निर्वहन करता है। स्वास्थ्यलाभकी दृष्टिसे यह शंख दक्षिणावर्ती शंखसे भी अधिक प्रभावकारी है। रातभर इस शंखमें रखे हुए पानीसे यदि त्वचा धोयी जाय तो त्वचा-सम्बन्धी सारे रोग समाप्त हो जाते हैं। यदि त्वचापर सफेद दाग हो तो शंखको थोड़े पानीमें बारह घंटे रखे। उस पानीको कुछ दिन लगाते रहनेसे सफेद दाग नष्ट हो जाते हैं। रातभर इस शंखमें पानी रखे और सुबह इसमें थोड़ा गुलाबजल डालकर बालोंको धोनेसे बालोंकी सफेदी थम जाती है। ऋषि आश्रमों, प्राचीन मन्दिरों तथा धार्मिक संस्थाओंमें शंख देखे जा सकते हैं। तान्त्रिक लोगोंद्वारा भी तन्त्रविद्याको प्रगाढ़ता देनेके लिये भी शंख-पूजा की जाती है। प्राचीनकालमें तो परिवारके पूजाघर तथा मन्दिरों आदिमें शंखनाद सुनायी देता था, किंतु अब धीरे-धीरे इसका प्रचलन कम हो गया है।

शंखको सुख-सम्पन्नता, समृद्धि और यश-कीर्तिके लिये लक्ष्मीका प्रतिरूप माना गया है। शंखोंके अन्य तीन प्रकार इस प्रकार हैं—

१. दक्षिणावर्ती, २. मध्यावर्ती और ३. वामावर्ती। जो शंख दाहिने हाथसे पकड़ा जाता है, वह दक्षिणावर्ती शंख है। जो बीचमें अँगुली डालकर पकड़ा जाता है, तथा जिस शंखका मुँह मध्य भागमें होता है, उसे मध्यावर्ती और जो शंख बायें हाथसे पकड़कर बजाया जाता है, वह वामावर्ती शंख कहलाता है। शंख और भी अनेक प्रकारके होते हैं। यथा—गोमुखी, लक्ष्मी, कामधेनु, विष्णु, देव, चक्र, सुघोष, मणिपुष्पक, शनि, राहु, केतु, शेषनाग, राक्षस, कच्छप आदि। यदि परिवारमें कलह व्याप्त है, तो शंखमें गायका दूध भरकर छिड़काव करे और भवनमें वास्तुदोष हो तो घरमें शंख रखना चाहिये। वैज्ञानिक तथ्योंके आधारपर माना जाता है कि गर्भवती महिलाको शंखका जल पिलानेसे उत्तमकोटिकी सन्तान जन्म लेती है।

श्वास और फेफड़ोंके रोग दूर करनेके लिये प्रतिदिन शंख बजाना लाभप्रद है। शंखमें कैल्शियम और फास्फोरसकी मात्रा होती है। इसमें गन्धकके गुण व्याप्त हैं। इसीलिये इसमें जल भरकर रखते हैं। शंखध्वनि जहाँतक प्रसारित होती है, वहाँतकके रोगाणु नष्ट हो जाते हैं। आयुर्वेदके अनुसार कहा गया है कि शंखके पानीसे पेटके कीड़े नष्ट होते हैं। यह पानी आयुवर्धक है। शंखकी भस्मसे कई प्रकारकी औषधियाँ निर्मित होती हैं। पुराणोंके अनुसार शंख चन्द्रमा और सूर्यके समान ही देवतुल्य माना गया है। मान्यता है कि शंख के मध्यभागमें वरुण, पृष्ठभागमें ब्रह्मा और अग्रभागमें गंगा और सरस्वती विराजती हैं। समुद्र-मन्थनसे प्राप्त चौदह रत्नोंमें शंखका आठवाँ स्थान था। उच्चकोटिके शंख कैलास-मानसरोवर, मालदीव, लक्षद्वीप, कोरामण्डल द्वीपसमूह, श्रीलंका और भारतमें पाये जाते हैं। नियमित शंख बजाते रहनेसे खाँसी, दमा, पीलिया, ब्लड प्रेशर तथा हृदय-सम्बन्धी रोगोंसे छुटकारा मिल जाता है। शास्त्रोंमें इसे महौषधि माना गया है।

शंखमें पंचतत्त्वोंका संतुलन बनाये रखनेकी अपार क्षमता होती है। उत्सव, पर्व, विवाह, पूजा-पाठ, हवन, आरती-जैसे समयमें शंख बजाना मंगलमय माना जाता है। घरमें दो शंख रखना अशुभ माना गया है। विषम संख्यामें शंखोंको रखना हितकर बताया गया है। शंखकी पवित्रता बनाये रखनेके लिये इन्हें पूजाघर तथा पवित्र स्थानोंपर रखा जाना चाहिये। शंखके अपवित्र हो जानेके कुछ कारण भी हैं, इनसे बचाव आवश्यक हैं, जैसे—दरार पड़ना या चटक जाना, टूटना-फूटना, जो शंख नहीं बजता हो, बजाते समय हाथसे गिर जाना, शंख-ध्वनिमें अन्तर आ जाना, आकृतिका सुन्दर नहीं लगना आदि। टूटे हुए शंखोंको नदी या तालाबमें प्रवाहित कर देना चाहिये।

यदि शंखभस्म आयुर्वेद विधासे तैयार हो तो वह अजीर्ण, ग्रहणी, जिगर, तिल्ली, आमांश, अम्लपित्त आदिमें उपयोगी है। शंखवाले जलसे महिलाओंको बाँझपनसे मुक्ति मिलती है। लक्ष्मी साधनाका सर्वश्रेष्ठ दिन दीपावली माना गया है। इस दिन दक्षिणावर्ती शंखको घरके पूजाघरमें स्थापितकर पूजा-अर्चना की जानी चाहिये। शंखपर कुमकुमसे स्वस्तिक चिह्न अंकित करें तथा बायें हाथसे चावलका एक-एक दाना नित्य प्रति जपके साथ उसमें समाहित करें। जब वह पूरा भर जाय, तो चावलके दानोंके साथ शंखको रेशमी लाल वस्त्रमें बाँधकर व्यावसायिक प्रतिष्ठानके कार्यालयमें स्थापित कर दे। यह सुख-समृद्धि प्रदान करेगा।

बच्चोंके वाणी-सम्बन्धी विकारोंको नष्ट करनेके लिये भी शंखका पानी लाभदायक होता है। इसके द्वारा कुण्डलिनी जागरणका भी विधान है। शंख पवित्रताका परिचायक है। इसे पूजा-स्थलपर रखा जाना चाहिये। भारतीय संस्कृतिमें शंख पूजनीय एवं समस्त सुखोंका प्रदाता माना गया है। अतः आस्था एवं निष्ठापूर्वक विधि-विधानसे जो शंखका रख-रखाव करते हैं, उनकी श्रीवृद्धि होती है।

श्रीफल—नारियल

(वैद्य श्रीबालकृष्णजी गोस्वामी)

सनातन धर्ममें सभी मांगलिक उत्सवों और अवसरोंपर नारियलकी विशेष भूमिका रहती है। यह उत्तम फल सांस्कृतिक सम्पन्नता तथा राष्ट्रीय एकताका शाश्वत प्रतीक है। दक्षिण भारतके समुद्रतटीय क्षेत्रोंमें इसकी उत्पत्ति होती है और उत्तर भारतके छोटे-बड़े सभी मन्दिरों और पूजन-कार्योंमें इसका उपयोग होता है। पुराणोंके अनुसार यह विश्वामित्र ऋषिकी सृष्टिका प्रथम फल है। देवताओंमें जो स्थान गणेशजीका है, वही स्थान फलोंमें नारियलका है। अतएव इसे श्रीफल कहा जाता है। वेदोंमें इस फलको कल्पवृक्षका उत्पाद माना गया है। नारियलमें ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश—इन तीनों देवताओंका वास होता है। यह फल समृद्धि, सम्मान, उन्नति एवं सौभाग्यका प्रदायक है।

देवपूजन, पितृपूजन तथा सनातन धर्मके सभी सोलह संस्कारोंमें नारियलका प्रयोग अवश्यमेव किया जाता है। भगवान् शंकरकी पूजामें नारियल प्रयुक्त होता है।

कूष्माण्डं मातुलुंगञ्च नारिकेलफलानि च।
रम्याणि पार्वतीकान्त सोमेश प्रतिगृह्यताम्॥

(अ०ह०सं०)

आरोग्य, शक्ति, समृद्धि, ऊर्जा, शीतलता, शान्ति एवं दीर्घायुप्रदाता नारियल जीवनके लिये अनुपम वरदान है। शास्त्रोंमें नारियलको दृढ़फल, लांगली, कूर्चशीर्षक, तुंग, स्कन्धफल, तृणराज तथा सदाफलकी संज्ञा प्रदान की गयी है। प्राचीन ग्रन्थोंमें नारियलके अतिरिक्त बिल्वफल और आँवलेको भी श्रीफलकी संज्ञा प्रदान की गयी है। बाहरी संक्रमण तथा विषाक्ततासे अप्रभावित होने, बहुत कालतक उपयोगी बने रहने तथा स्वादिष्ट और पोषक होनेके कारण ही नारियल अधिक लोकप्रिय है। भोजन, पानी और गृहनिर्माण तीनों आवश्यकताएँ नारियलसे पूरी हो जाती हैं।

आयुर्वेदके अनुसार नारियल मधुर, शीतल, स्निग्ध, अनुलोमक, पौष्टिक, हृदयहेतु बलदायक, शूलनिवारक, मूत्राशयशोधक, रक्तदोषनाशक, दाहशामक और वात-पित्तप्रशामक है। कच्चा फल उष्णतानिवारक, अग्निदीपक, रक्तशोधक, व्रणरोपक, मूत्ररोहगहर तथा हिचकी, मूर्च्छा, वमन एवं ज्वररोगका नाशक है। भावप्रकाशनिघण्टुमें कहा गया है—

नारिकेलफलं शीतं दुर्जरं बस्तिशोधनम्।
विष्टम्भि बृंहणं बल्यं वातपित्तास्तदाहनुत्॥
तस्याम्भः शीतलं हृद्यं दीपनं शुक्रलं लघु।
पिपासापित्तजित्स्वादु बस्तिशुद्धिकरं परम्॥

नारियलके वृक्ष ४०-५० फुट ऊँचे होते हैं, जो भारतके समुद्रतटवर्ती प्रान्तोंमें बहुतायतसे प्राप्त होते हैं। इसका पेड़ ७-८ वर्ष बाद फल देने लगता है। एक पेड़से प्रतिवर्ष लगभग सौ फल प्राप्त होते हैं। कच्चे फलमें मधुर पानी भरा रहता है, इस कच्चे फलको डाभ कहते हैं। मध्यावस्थामें इसका कुछ भाग कोमल गिरीके रूपमें परिणत हो जाता है। पक्वावस्थामें गिरी या मज्जा कठोर हो जाती है। इस वृक्षकी आयु सौसे दो सौ वर्षके मध्य होती है।

१०० ग्राम नारियलकी मज्जामें निम्न पोषक तत्त्व पाये जाते हैं—

कार्बोहाइड्रेट	१३ ग्राम	ताँबा	०.३२ मिग्रा
प्रोटीन	४.५ ग्राम	क्लोरीन	११४ मिग्रा
वसा	४१.६ ग्राम	विटामिन ए	अल्प
कैल्शियम	११ ग्राम	विटामिन बी-१	४५ माइक्रो
फॉस्फोरस	२४० मिग्रा	विटामिन बी-२	१०० माइक्रो
पोटैशियम	४२६ मिग्रा	नायसिन	०.८ मिग्रा
सोडियम	१७ मिग्रा	विटामिन-सी	१७ मिग्रा
मैग्नीशियम	५२ मिग्रा	कैलोरी	४४५ मिग्रा
लोहा	२ मिग्रा		

स्नायुमण्डलको शक्ति प्रदान करनेहेतु नारियल उत्तम रसायन है। लोहे तथा ताम्रकी विद्यमानताके कारण यह रक्तकी वृद्धि करता है। अम्लपित्त तथा पेटके अल्सरके लिये इसका पानी रामबाण औषधि है। यह

पानी हृदय-रोग, वृक्करोग, श्वसननली-शोथ, उदररोग, आन्त्रशोथ, मूत्राशय-विकार, खसरा, मोतीझरा आदि रोगोंकी उपचार-अवधिमें पोषण प्रदान करता है। धड़कन, घबराहट, बेचैनी तथा कमजोरीके निराकरणहेतु नारियल उत्कृष्ट खाद्य-पदार्थ है। इसकी ताजा गिरीको मिश्रीके साथ मिलाकर खानेसे आँखोंकी ज्योति बढ़ती है। नकसीर, गला सूखना, लू लगना, शरीरदाह आदिमें नारियल बहुत लाभकारी है। इसका रेशा (फाइबर) विशेष प्रकारके तन्तुओंसे बना होता है, जो कैंसर, हृदयावरोध एवं लकवे-जैसी घातक व्याधियोंसे शरीरकी रक्षा करता है।

गर्भस्थ शिशुके उत्तम विकासहेतु गर्भवती महिलाओंको नारियलका सेवन करना चाहिये। मूत्रकी जलनको दूर करनेमें यह बहुत कारगर है। कच्चे नारियलके दूध-जैसे रसकी मालिश करनेसे सिरकी रूसी नष्ट होती है। नारियलकी गिरीको मिश्री तथा कालीमिर्चके साथ खानेसे माइग्रेन एवं अन्य सिरदर्द दूर होते हैं। पक्व नारियलको घियाकस करके चीनीकी चाशनीमें मिलाकर बर्फी जमा लें। यह बर्फी ५०-५० ग्रामकी मात्रामें प्रातः-सायं खानेसे कुछ दिनोंमें आधीसीसीका दर्द मिट जाता है और नेत्रज्योति भी बढ़ती है। बालकोंकी अस्थियों और दाँतोंके विकासके लिये यह बहुत लाभकर है। श्रीफलका नियमित सेवन हृदयरोगोंसे मनुष्यकी रक्षा करता है।

आधे पके नारियलका ताजा दूध स्निग्ध, रुचिकारक तथा पुष्टिदायक है। खाली पेट एक नारियलका दूध पीनेसे पेटके कीड़े नष्ट हो जाते हैं। यह क्षयरोग तथा सुजाकमें भी हितकारी है। सूखी खाँसीमें यह दूध चमत्कारी प्रभाव दिखलाता है। प्रसवके बाद गर्भाशयकी पीड़ा एवं सूजन कम करनेहेतु नारियल खिलाया जाता है। खीर, हलवा तथा अन्य कई मिठाइयोंमें नारियलका चूरा मिलाया जाता है, इससे पौष्टिकता एवं स्वाद दोनोंकी वृद्धि होती है। नारियल अजीर्ण, लीवरकी सूजन, बवासीर, अतिसार, हिचकी, वमन आदिका शमन करनेमें सक्षम है।

नारियलका तेल भी चर्मरोगोंमें लगानेपर बहुत लाभ करता है। नारियल तेल २ चम्मच, चूनेका पानी १ चम्मच तथा नीबूका रस १ चम्मच मिलानेसे यह अच्छा सौन्दर्य-प्रसाधन बन जाता है। नारियलकी जटाको जलाकर बनायी गयी भस्म भी अनेक रोगोंका शमन करती है। आधा चम्मच भस्मको शहदके साथ मिलाकर चाटनेसे हिचकी बन्द हो जाती है। यह भस्म पेटकी वायु तथा अम्लपित्त रोगकी अचूक औषधि है। नारियल जटाकी भस्म श्वासरोग एवं क्षयरोगमें भी कारगर है। यह भस्म छाछके साथ लेनेसे बवासीरमें लाभ करती है। इस भस्मको कपूर तथा नारियलके तेलके साथ मिलाकर लगानेसे दाद-खाज नष्ट होती है एवं चमड़ीकी कान्ति बढ़ जाती है।

बोध-कथा—

दूसरोंकी तृप्तिमें तृप्ति

कलकत्तेके सुप्रसिद्ध विद्वान् श्रीविश्वनाथ तर्कभूषण बीमार पड़े थे। चिकित्सकने उनकी परिचर्या करनेवालोंको आदेश दिया—'रोगीको एक बूँद भी जल नहीं देना चाहिये। पानी देते ही उसकी दशा चिन्ताजनक हो जायगी।'

श्रीतर्कभूषणजीको बहुत तीव्र प्यास लगी थी। उन्होंने घरके लोगोंसे कहा—'अबतक मैंने ग्रन्थोंमें पढ़ा है तथा स्वयं दूसरोंको उपदेश किया है कि समस्त प्राणियोंमें एक ही आत्मा है, आज मुझे इसका अपरोक्षानुभव करना है। ब्राह्मणोंको निमन्त्रण देकर यहाँ बुलाओ और उन्हें मेरे सामने शरबत, तरबूजका रस तथा हरे नारियलका पानी पिलाओ।'

घरके लोगोंने यह व्यवस्था कर दी। ब्राह्मण शरबत तथा नारियलका पानी पी रहे थे और तर्कभूषणजी अनुभव कर रहे थे—'मैं पी रहा हूँ।' सचमुच उनकी रोगजन्य तृषा इस अनुभवसे शान्त हो गयी।

वैष्णवप्रतीकदर्शन

(पं० श्रीश्यामजीतजी दुबे आथर्वण)

शुद्धात्मा सरलात्मा पवित्रात्मा भक्तोंके चरणोंकी रजको अपने ललाटपर रखकर हम वैष्णव प्रतीक त्रिपुण्डके रहस्यका अनावरण कर रहे हैं। **पुण्ड खण्डने पुण्डति+घञ् अच् वा पुण्डं यस्मात् तस्माद् वा पुण्डति खण्डयति विचूर्णयति नाशयति पापानि।** जिससे पापोंका विनाश हो। पुनः पुण्ड् + रक् = पुण्ड्रका अर्थ है, श्वेतकमल जो कि सत्त्वगुणका प्रतीक है। पुण्ड एवं पुण्ड्र दोनों व्यवहार्य हैं। त्रि संख्यावाचक विशेषण लगनेसे त्रिपुण्ड/त्रिपुण्ड्र शब्द बनता है। **त्रयाणां पुण्डानां/पुण्ड्राणां समाहारः**। यह तीन ऊर्ध्व रेखाओंका समवेत प्रतीक है। इसलिये इसे ऊर्ध्व पुण्ड/पुण्ड्र कहते हैं, जो ललाटकी शोभा बढ़ाता है। सरलतासे उच्चरित होनेके कारण हम यहाँ त्रिपुण्ड शब्द ही ले रहे हैं। यह त्रिपुण्ड दैहिक, दैविक, भौतिक—इन तीन तापों (दुःखों)-का विनाशक या निवारक है।

महाभारतान्तर्गत श्रीविष्णुसहस्रनामस्तोत्रके अन्तर्गत त्रिककुब्धाम, त्रिदशाध्यक्ष, त्रिपद, त्रिविक्रम, त्रिलोकधृक्, त्रिलोकात्मा, त्रिलोकेश, त्रिसामा—ये आठ नाम त्रिपुण्डको व्याख्यायित करते हैं। जिसके ललाटपर त्रिपुण्डका चिह्न बना हुआ है, वह विष्णुस्वरूप मनुष्यरूपधारी विष्णु है। ऐसे दैवी सम्पत्तिधारी विष्णुको हमारा नमस्कार!

त्रिपुण्डमें तीन खड़ी रेखाएँ होती हैं, जो नीचेकी एक पड़ी रेखासे मिली होती हैं। यह पड़ी रेखा परमब्रह्म है। तीनों खड़ी रेखाएँ क्रमशः ईश्वर, माया एवं जीव हैं। त्रिपुण्डमें सम्पूर्ण वैष्णव दर्शन है। परम ब्रह्म परम पुरुष परमात्मा है, जो निर्गुण निराकार निष्कल है। मूल प्रकृति ही माया है, जो ईश्वरकी शक्ति है। ईश्वर मायावी है। जगत् मायाका प्रत्यक्ष स्वरूप है। जीव ईश्वरका अंश (स्वरूप) है, जिसका नियन्ता ईश्वर है। ईश्वर सत्त्वप्रधान है। जगत् तमःप्रधान है। जीव रजःप्रधान है। ईश्वर और जीवको विभक्त करनेवाली माया है। माया अज्ञान है। अज्ञान ही अविद्या है। माया प्रज्ञा है। मायावी ईश्वर प्रज्ञावान् है। जीव अप्रज्ञावान् है। ईश्वर जगत्का द्रष्टा है। जीव जगत्का भोक्ता है। ईश्वर सुख-दुःखके द्वन्द्वसे परे है। जीव सुख-दुःखके द्वन्द्वसे ग्रस्त है। ईश्वर और जीवके बीचमें एक अदृश्य दीवार सदैव रहती है, जिसके कारण जीव अपने स्वरूप (ईश्वर)-को देख (जान) नहीं पाता। ईश्वरके लिये माया पारदर्शी आवरण है। जीवके लिये माया अपारदर्शी आवरण है।

सगुण साकार ब्रह्म ईश्वर है, जो संसार (माया)-से अलिप्त है। सगुण साकार ब्रह्म जीव है, जो मायासे संलिप्त है। जीव, जगत्, ईशके त्रिपुण्डको जानना साधु है। अग्रगामी ईश्वर राम है। ईश्वर रामकी अनुगामिनी माया सीता है। इस माया सीताके पीछे चलनेवाला जीव लक्ष्मण है। राम ज्ञान है, जो पुरोगामी है। सीता भक्ति है, जो ज्ञान रामकी पश्चगामी है। माया सीताके पीछे चलनेवाला जीव लक्ष्मण वैराग्य है। भक्ति सीता स्त्री है। ज्ञान राम पुरुष है। वैराग्य लक्ष्मण भी पुरुष है। त्रिपुण्डमें भक्ति मध्यमें है। भक्तिके आगे-पीछे ज्ञान और वैराग्य हैं। भाव यह कि भक्तिकी रक्षा ज्ञान एवं वैराग्यसे होती है। जिसमें ज्ञान, भक्ति, वैराग्य सदा साथ रहते हैं, वह भक्त जीव विष्णुका स्वरूप है।

विष्णुसहस्रनाममें भगवान्के नाम हैं—विश्वम् विष्णुः श्रीः लक्ष्मी रामः ब्रह्म तथा वैखानः। विष्णु विश्व (व्यापक) है, राम ब्रह्म (ईश्वर) है, श्री लक्ष्मी (सीता) तथा जीव वैखान (वैराग्य) लक्ष्मण है। ये सब विष्णु हैं।

एक परम तत्त्वका तीन रूपोंमें अभिव्यक्त होना, त्रिपुण्ड है। यह त्रिपुण्ड राम (भद्र, शुभ, अच्छा, मंगल, कल्याण, आश्रय, आनन्द) है। त्रिपुण्डमें बेड़ी रेखा राम है तथा तीनों उठी रेखाएँ क्रमशः—

र=रमण (क्रीड़ा) शील पुरुष।

आ=आद्या शक्ति प्रकृति।

म=मर्त्यदेहधारी जीव।

आद्याशक्ति प्रकृति रजोवती होनेसे रक्तवर्णा है, जो

समस्त चराचर जगत्‌को अपने गर्भ (अन्तः)-में धारण करती है। इसीलिये त्रिपुण्डकी मध्य रेखा लाल रंगकी होती है। यह जड़ (उत्पादक) तत्त्व है। इसके बगलकी दोनों रेखाएँ चेतन (अनुत्पादक) तत्त्व हैं। इनमेंसे एक तत्त्व शाश्वत दिव्य देहधारी है, तो दूसरा मर्त्य पार्थिव देहधारी है। यह रामदर्शन है। किसी-किसी पुण्यात्माको इसका बोध होता है। परमहंसकी वाणी है—

एक राम दशरथ का बेटा=नीचे की पड़ी रेखा।
एक राम घट घट में लेटा=प्रथम ऊपर उठी रेखा।
एक राम यह जगत पसारा = मध्य की ऊर्ध्व रेखा।
एक राम है सबसे न्यारा = तृतीय ऊपर उठी रेखा।

त्रिपुण्डमें संसारका बीज (आधार) राम है। राम ही भोक्ता जीव है तथा राम ही अभोक्ता द्रष्टा भगवान् है। राम ही भोग है। भक्त (भजनकर्ता जीव) राम है। भक्त वह है, जो भोगको भगवान्‌के रूपमें भोगे। भग (ऐश्वर्य) ही भगवान् है। भक्त जीव भगवान् होनेकी कामना करता है। इस संदर्भमें वेदका यह वचन है—

भग एव भगवाँ अस्तु
देवस्तेना वयं भगवन्तः स्याम।
तं त्वा भग सर्व इज्जोहवीमि।
स नो भग पुरएता भवेह॥

(अथर्ववेद ३।१६।५)

इस मन्त्रमें भगको भगवान् कहा गया है। 'भा भाति प्रकाशने' से भ तथा 'गम् गच्छति गतौ प्राप्तौ' से ग सिद्ध है। अतएव भग=जो प्रकाशित, प्रकट है तथा आने-जाने वाला है। यश, कीर्ति, सौन्दर्य, बल, ज्ञान, प्राण—ये षड् बल हैं। जिसके या जिससे ये सब हैं, वह भगवान् है। भगवान् सदा भगसे अभिन्न होता है। इसलिये भगको भगवान् मानना साधु है। सूर्य भग है। अतएव सूर्य साक्षात् भगवान् है। 'भज् सेवायाम्' से भग शब्द बना है। जिसका सेवन किया जाता है, वह सब भगवान् है। समस्त सम्पत्तियाँ, भोग सेव्य होनेसे भग हैं। जिसके पास समस्त भोग हैं, वह भगवान् या भाग्यवान् है। यह सत्य है।

भग एव भगवान् अस्तु=भग ही भगवान् होवे।

देवः तेन आ वयम् भगवन्तः स्याम=उस भगसे हम पूर्णतः देव (दाता) भगवान् होवें।

तम् त्वा (म्) भग सर्वः इत् जोहवीमि=उस तुझ सर्वरूपका ही, हे भग! (मैं) बार-बार आह्वान करता हूँ।

सः नः भग पुरः एता भव इह=हे भगवन्! वह तू हमारे इस (यज्ञकर्म)-में अग्रगन्ता (अगुवा, मार्गदर्शक, गुरु) हो।

इस मन्त्रसे स्पष्ट है— भक्त, भोग, भगवान्‌के त्रिपुण्डमें भेदाभेद सम्बन्ध है। इसका ज्ञाता तत्त्वज्ञानी है।

बोध-कथा—

प्रेम-दयाके बिना व्रत-उपवास व्यर्थ

बेलगाँव जिले (दक्षिण कर्नाटक)-के मुरगोड़ स्थानके चिदम्बर दीक्षित सनातन वैदिक धर्मके बहुत बड़े उद्‌घाटक, भक्ति-ज्ञानके प्रसारक और प्रेम, सेवा एवं परोपकारके साकार विग्रह माने जाते थे।

एक बार एक स्त्री सन्तान न होनेसे अत्यन्त खिन्न हो दीक्षितजीकी कृपा पानेके लिये आ पहुँची। वह अनेक व्रत-उपवासादि करती, पर उसका चित्त प्रेम-दयादि गुणोंसे सर्वथा रहित था। दीक्षितजीने पासमें पड़े भूने चनेकी दो मुट्ठी उसे देकर कहा—'जा, दूर बैठ; बुलाऊँ, तब आना।'

वह दूर जाकर चना चबाने बैठी। खेलते-खेलते वहाँ पाँच-सात बच्चे आये। कुछ उसके मुँहकी ओर देख रहे थे, तो कुछने हाथ भी पसारा। 'एकको देनेपर सभीको देना पड़ेगा' यह सोच वह स्त्री मुँह छिपाकर चने खाने लगी। उसने एक दाना भी किसीको नहीं दिया। दीक्षितने उसे पास बुलाकर समझाया—'अरी, जब फोकटमें मिले चनोंमेंसे चार दाने भी तुमसे किसीको देते नहीं बना, तब भगवान् तुम्हें हाड़-मांसके बच्चे कैसे देंगे? प्रेम और दयाके बिना कोरे व्रत-उपवासोंसे भगवान् कभी प्रसन्न नहीं होते।' उपस्थित लोगोंने भी यह शिक्षा गाँठ बाँध ली।

तीर्थ-दर्शन—

छत्तीसगढ़का शिवरीनारायण-मन्दिर

(डॉ० श्रीप्रदीपकुमारजी शर्मा)

भक्त नाभादासरचित भक्तमालमें एक प्रसंग आता है, जिसमें भगवान् श्रीरामचन्द्रजी अपनी एक भक्त माता शबरीके हाथों बेर खाते हैं। शबरीका भक्ति-साहित्यमें अद्वितीय स्थान है। रामायणके अरण्यकाण्डमें उल्लेख मिलता है कि शबरीके देह त्यागनेके बाद भगवान् श्रीरामचन्द्र और लक्ष्मणजीने उसका अन्तिम संस्कार किया था। पौराणिक सन्दर्भोंके अनुसार शबरी एक भीलनी अर्थात् भील जातिकी कन्या थीं। उनका मूल नाम श्रमणा था। उनके पिता अज भीलोंके मुखिया थे। माताजीका नाम इन्दुमति था। ये भील जातिसे सम्बन्धित शबर समाजके थे। कहा जाता है कि श्रमणा बचपनमें प्रायः वैराग्यकी बातें किया करती थीं। उनके माता-पिताने जब यह बात एक पण्डितजीको बतायी, तो उन्होंने सलाह दी कि इसका विवाह करा दीजिये।

शबरीका विवाह एक भीलकुमारसे तय कर दिया गया। परम्परानुसार विवाहसे पहले सैकड़ों पशु वधके लिये लाये गये। इसे देखकर शबरी बहुत दुखी हो गयी। परम्पराके मुताबिक तत्कालीन भील समाजमें किसी भी शुभ अवसरपर पशुओंकी बलि दी जाती थी, लेकिन शबरीको पशु-पक्षियोंसे बहुत स्नेह था। इसलिये पशुओंको बलिसे बचानेके लिये शबरीने विवाह नहीं किया और विवाहसे एक दिन पहले ही घरसे भागकर दण्डकारण्य चली गयी।

दण्डकारण्यमें ऋषि मतंग तपस्या कर रहे थे। शबरी उनकी सेवा करना चाहती थी। तत्कालीन समाजमें व्याप्त जाति-प्रथाके अनुसार भील जातिकी

होनेके कारण उसे अंदेशा था कि शायद उसे सेवाका अवसर न मिले। फिर भी वह सुबह-सुबह ऋषि मतंगके सोकर उठनेसे पहले ही उनके आश्रमसे नदीके तटतकका रास्ता झाड़ूसे बुहारकर साफ कर देती थी। वह यह काम ऐसे करती थी कि किसीको पता ही नहीं चलता था। एक दिन ऋषि मतंगको पता चल गया कि शबरी वर्षोंसे निःस्वार्थ भावसे उनकी सेवा कर रही है, तो वे बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने उसे अपने आश्रममें शरण दे दी।

शबरीके कामसे खुश होकर मतंग ऋषिने उन्हें अपनी बेटी मान लिया था। समयके साथ मतंग ऋषिका शरीर बूढ़ा हो गया था। एक दिन मतंग ऋषिने शबरीको अपने पास बुलाया और कहा, 'पुत्रि! मैं अपना देहत्याग कर रहा हूँ। बहुत साल हो गये, इस शरीरमें रहते-रहते।' तब शबरीने कहा, 'गुरुदेव! आपके बिना मैं अकेले जीकर क्या करूँगी? इसीलिये मैं भी अपना देह त्याग दूँगी।' तब मतंग ऋषिने कहा, 'एक दिन तुम्हारे पास भगवान् श्रीराम स्वयं चलकर आयेंगे। वही तुम्हें मोक्ष देंगे। तबतक तुम यहीं उनकी प्रतीक्षा करो।' ऐसा कहकर मतंग ऋषिने अपना देह त्याग दिया।

उसी दिनसे शबरी प्रतिदिन भगवान् श्रीरामकी राह देखती थी। नित्य अपनी कुटियाके बाहर बैठकर श्रीरामके आनेकी प्रतीक्षा करती थी। ऋषि मतंग त्रिकालदर्शी थे। इसलिये वे भविष्यकी बात पहले ही जान चुके थे। भक्त माता शबरीने अपने गुरुदेव ऋषि मतंगकी बात गाँठ बाँधकर रख ली। प्रतिदिन सुबह उठकर अपनी झोपड़ीकी अच्छेसे लिपाई-पोताईकर रास्तेमें फूल बिछाकर दरवाजेके बाहर श्रीरामकी प्रतीक्षा करती थीं। यह क्रम एक-दो या कुछ सप्ताह-महीने नहीं, बल्कि वर्षोंतक चला। माता शबरी कभी निराश नहीं हुईं। उन्होंने अपना पूरा जीवन भगवान् श्रीरामकी प्रतीक्षामें बिता दिया। उन्हें अपने गुरुदेवकी बातपर पूरा विश्वास था कि श्रीरामचन्द्रजी उसकी झोपड़ीमें जरूर आयेंगे। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि जब ऋषि मतंगने परलोकगमन किया, तब शबरी महज दस वर्षकी थी। उस समय राजा दशरथका कौसल्याजीसे विवाहतक नहीं हुआ था।

कालान्तरमें अपने पिताके आदेशका पालन करते हुए भगवान् श्रीरामचन्द्रजी जब चौदह वर्षके वनवासपर निकले, तब वे अपनी अनन्य भक्त माता शबरीकी झोपड़ीमें पधारे। वर्षों बाद जब शबरीको अपने आराध्य प्रभु श्रीरामचन्द्रजीके दर्शन हुए तो वे इतनी भावविभोर हो गयीं कि वे मीठे बेर खिलानेकी इच्छासे स्वयं चख-चखकर श्रीरामचन्द्रजीको खानेके लिये देने लगीं। भगवान् श्रीरामचन्द्रजी शबरीकी भक्तिके वशीभूत उनके दिये बेर भी खुशी-खुशी खाने लगे। उन्होंने कुछ बेर अपने अनुज लक्ष्मणको भी दिये। लक्ष्मणजीने भैयाका मान रखते हुए बेर ले तो लिये, पर खाये नहीं। माना जाता है कि इसका दुष्परिणाम यह हुआ कि कालान्तरमें वनवासके दौरान राम-रावण-युद्धमें जब शक्ति बाणका उपयोग हुआ, तो लक्ष्मणजी मूर्च्छित हो गये थे। उस समय बेरसे बनी हुई संजीवनी बूटीसे उनका जीवन बचाया गया था।

जब भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने शबरीसे जानेकी अनुमति माँगी, तब शबरीने कहा कि जिस रामकी प्रतीक्षामें उन्होंने अपना पूरा जीवन बिता दिया, अब उन्हें कैसे जानेकी अनुमति दे दे। उन्होंने श्रीरामचन्द्रजीका नाम-स्मरण करते हुए देह त्याग दिया। श्रीरामचन्द्रजीने ही उनके अन्तिम संस्कार किये थे।

रामायणकालमें मतंग ऋषिके जिस आश्रममें प्रभु श्रीरामचन्द्रजीने भक्त माता शबरीके बेर खाये थे, वह वर्तमान छत्तीसगढ़ राज्यके जांजगीर-चाम्पा जिलेके शिवरीनारायण नामक स्थानपर स्थित है। महानदी, शिवनाथ और जोंक नदीके त्रिधारा संगमपर बसा है—शिवरीनारायण। माता शबरीकी स्मृतिको अक्षुण्ण बनाये रखनेके लिये शबरीनारायण नगर बसाया गया, जो कालान्तरमें शिवरीनारायण हो गया है। माता शबरीकी अनन्य भक्तिभावसे भीगी इस पावन धरापर शिवरीनारायणके

पास खरोदमें दुनियाका एकमात्र शबरी मन्दिर स्थित है। पौराणिक कथाओंके अनुसार रामायणकालसे ही यहाँ शबरीजीका आश्रम है। ऐसी मान्यता है कि भगवान् जगन्नाथकी विग्रह मूर्तियोंको शिवरीनारायणसे ही ओड़िसाके जगन्नाथपुरीमें लाया गया है। कहा जाता है कि हर साल माघीपूर्णिमाके दिन भगवान् जगन्नाथ यहाँ नारायणरूपमें विराजते हैं। छत्तीसगढ़की जगन्नाथपुरीके नामसे विख्यात शिवरीनारायण प्राकृतिक छटासे परिपूर्ण एक सुन्दर नगरी है।

प्रो० अश्विनी केसरवानीजीने अपनी पुस्तक 'शिवरीनारायण—देवालय एवं परम्पराएँ' में लिखा है—चारों दिशाओंमें अर्थात् उत्तरमें बदरीनारायण, दक्षिणमें रामेश्वरम्, पूर्वमें जगन्नाथपुरी और पश्चिममें द्वारिकानाथ स्थित हैं। लेकिन मध्यमें 'गुप्तधाम'के रूपमें शिवरीनारायण स्थित हैं। याज्ञवल्क्यसंहिता एवं रामावतार-चरित्रमें उल्लेख है कि भगवान् श्रीरामचन्द्रजीका नारायणी रूप यहाँ गुप्त रूपसे विद्यमान है। इसलिये शिवरीनारायणको गुप्त तीर्थधाम भी कहा जाता है। यह नगर सतयुगमें बैकुण्ठपुर, त्रेतायुगमें रामपुर, द्वापरयुगमें विष्णुपुरी और नारायणपुरके नामसे विख्यात था, जो आज शिवरीनारायणके नामसे जाना जाता है।

मैकल पर्वत-श्रृंखलाकी तलहटीमें अपने अप्रतिम सौन्दर्यके कारण और चतुर्भुजी विष्णु मूर्तियोंकी अधिकताके कारण स्कन्दपुराणमें इसे 'श्रीनारायण क्षेत्र' और 'श्रीपुरुषोत्तम क्षेत्र' कहा गया है। प्रतिवर्ष माघ पूर्णिमासे यहाँ एक बृहद् मेलेका आयोजन होता है, जो महाशिवरात्रितक चलता है। इस मेलेमें हजारों-लाखों दर्शनार्थी भगवान् नारायणजीके दर्शन करनेके लिये आते हैं।

शिवरीनारायण मन्दिरको बड़ा मन्दिर एवं नर-नारायण मन्दिर भी कहा जाता है। यह मन्दिर प्राचीन स्थापत्य कला एवं मूर्तिकलाका बेजोड़ नमूना है। ऐसी मान्यता है कि इसका निर्माण राजा शबरने करवाया था। यहाँ नौवीं शताब्दीसे लेकर बारहवीं शताब्दीतककी प्राचीन मूर्तियोंकी स्थापना है। मन्दिरकी परिधि १३६ फीट तथा ऊँचाई ७२ फीट है, जिसके ऊपर १० फीटके स्वर्णिम कलशकी स्थापना है। शायद इसीलिये इस मन्दिरका नाम बड़ा मन्दिर भी पड़ा है। सम्पूर्ण मन्दिर अत्यन्त सुन्दर तथा अलंकृत है, जिसमें चारों ओर पत्थरोंपर नक्काशी करके लता-वल्लरियों एवं पुष्पोंसे सजाया गया है। मन्दिर अत्यन्त भव्य दिखायी देता है।

शिवरीनारायणमें कई अन्य मन्दिर भी हैं, जो विभिन्न कालोंमें निर्मित हुए हैं। चूँकि यह नगर विभिन्न समाजके लोगोंका सांस्कृतिक तीर्थ है। इसलिये उन समाजके लोगोंद्वारा यहाँ कई मन्दिरोंका निर्माण एवं जीर्णोद्धार भी कराया गया है। वैसे यहाँके बहुसंख्यक मन्दिर भगवान् विष्णुके विभिन्न अवतारोंके हैं। कदाचित् इसी कारण इस नगरको वैष्णव पीठ भी माना गया है। इसके अलावा यहाँ शैव और शाक्त परम्पराके अनेक प्राचीन मन्दिर भी हैं। इनमें प्रमुख हैं—माँ अन्नपूर्णा मन्दिर, भगवान् नारायण मन्दिर, लक्ष्मी-नारायण मन्दिर, चन्द्रचूड़-महादेव मन्दिर, केशवनारायण मन्दिर, श्रीराम-लक्ष्मण-जानकी मन्दिर, जगन्नाथ-मन्दिर, बलभद्र और सुभद्रासे युक्त श्रीजगदीश मन्दिर, श्रीराम-जानकी मन्दिर, राधाकृष्ण मन्दिर, काली मन्दिर, शीतलामाता मन्दिर और माँ गायत्री मन्दिर।

शिवरीनारायण जिला मुख्यालय जांजगीर-चाम्पासे लगभग ४५, बिलासपुरसे ६१, रायगढ़से १०० और रायपुरसे १३० किलोमीटरकी दूरीपर स्थित है। इन चारों ही शहरोंसे यहाँ सड़कमार्गसे आसानीसे पहुँचा जा सकता है। जांजगीर-चाम्पा, बिलासपुर, रायगढ़ और रायपुरतक ट्रेनसे और रायपुरतक सीधे हवाई मार्गसे भी पहुँचा जा सकता है। शिवरीनारायण किसी भी मौसममें जा सकते हैं। यहाँ लोगोंको उनके बजटके मुताबिक रहनेके लिये धर्मशालाएँ आसानीसे उपलब्ध हो जाती हैं। शिवरीनारायणसे जांजगीर-चाम्पा, बिलासपुर, रायगढ़ और रायपुरतक आवागमनहेतु आसानीसे सार्वजनिक एवं निजी वाहन मिल जाते हैं।

गंगाका भूगोल, माहात्म्य और तीर्थवैशिष्ट्य

(श्रीमती डॉ० कौमुदीजी श्रीवास्तव)

हिमालय और गंगाका स्थान भारतीय वाङ्मयमें अत्यन्त विलक्षण, उत्कृष्ट एवं समादृत है। भगवान् श्रीकृष्ण अपनी विभूतियोंका नामोल्लेख करते हुए कहते हैं कि स्थिर रहनेवालोंमें मैं हिमालय हूँ (**स्थावराणां हिमालयः**) तथा नदियोंमें जाह्नवी हूँ (**स्रोतसामस्मि जाह्नवी**)। उत्तरमें हिमालयकी चोटियों नन्दादेवी, गंगोत्तरी तथा यमुनोत्तरीका त्रिसमूह अत्यन्त विशिष्ट है। सच कहा जाय तो सिन्धु, हिमालय और गंगामें भारतवर्षके इतिहास, अर्थतन्त्र, धर्म, दर्शन और अध्यात्मकी एक झाँकी देखनेको मिल जाती है—

गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति।
नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु॥

हिमालयसे निकलनेवाली अनगिनत छोटी-छोटी प्राकृतिक जलधाराएँ एक-दूसरेसे मिलती हुई उत्तरोत्तर बड़ी होती जाती हैं और अन्ततोगत्वा एक नदीका रूप ले लेती हैं। हिमालयका ढलान उत्तर-पूर्वसे दक्षिण-पश्चिमकी ओर है, जिसे उत्तराखण्डसे उत्तर प्रदेशकी ओर बहती हुई नदियाँ सच साबित करती हैं।

प्रसिद्ध तीर्थ गंगोत्तरीसे ऊपर २२ किलोमीटरकी दूरीपर गोमुख अवस्थित है। वह गायके मुखके सदृश २४-२५ किलोमीटर लम्बा और ६ से लेकर ८ किलोमीटर चौड़ा एक हिमनद है, जो समुद्र-तलसे ४१०० मीटरकी ऊँचाईपर है। गोमुखसे भागीरथीकी उत्पत्ति होती है। अनेक छोटी-छोटी धाराएँ यहाँसे निकलकर एक-दूसरेसे मिलती हुई आगे बढ़ती हैं।

गंगाका नदीतन्त्र—गंगाका नदीतन्त्र अपनी समस्त सहायक नदियोंके साथ-साथ भारतवर्षमें सर्वाधिक बृहदाकार नदीतन्त्र है। गोमुखसे लेकर समुद्रमें मिलनेतक उसकी कुल लम्बाई २,५२५ किलोमीटर है। उत्तराखण्ड और उत्तर प्रदेशमें गंगाका सबसे बड़ा भाग प्रवहमान है, जो १,४५० किलोमीटर लम्बा है। बिहारमें गंगाकी लम्बाई ४४५ किलोमीटर है। पश्चिम बंगालमें वह ५५० किलोमीटरकी दूरी तय करती है। उत्तर प्रदेश और बिहारके बीचकी सीमाके रूपमें गंगाका ११० किलोमीटर हिस्सा आता है। भारतमें गंगाके बेसिनका कुल क्षेत्रफल ८ लाख ६१ हजार ४०४ वर्गकिलोमीटर है, जो दस राज्यों उत्तराखण्ड और उत्तर प्रदेश (२,९४,४१३ वर्गकिलोमीटर), मध्य प्रदेश (२,०१,७०५ वर्गकिलोमीटर), बिहार (१,४४,४१० वर्गकिलोमीटर), राजस्थान (१,०७,३८२ वर्गकिलोमीटर), पंजाब एवं हरियाणा (३४,२०० वर्गकिलोमीटर), पश्चिम बंगाल (७२,०१० वर्गकिलोमीटर), हिमाचल प्रदेश (५,७९९ वर्गकिलोमीटर) तथा दिल्ली (१४८५ वर्गकिलोमीटर)-में फैला हुआ है। गंगाके बेसिनका विस्तार देशके कुल भौगोलिक क्षेत्रका २६.३ प्रतिशत है। कहनेका तात्पर्य यह है कि वह भारतभूमिके एक चौथाई भागसे थोड़ा अधिक ही है। देशमें गंगाका बहाव क्षेत्र १ लाख २८ हजार ४११ वर्गकिलोमीटर है। इस प्रकार वह भारतवर्षका सर्वाधिक विशाल और महत्त्वपूर्ण जलक्षेत्र है। गंगामें वार्षिक बहाव अनुमानतः ४६८.७ अरब घनमीटर है, जो देशके कुल जल-संसाधनोंका २५.२ प्रतिशत है।

गंगाकी सहायक नदियाँ घाघरा, गण्डक और कोसी नेपालके कुछ इलाकोंसे होकर गुजरती हैं। नेपालमें उनका आवाह-क्षेत्र लगभग १ लाख ९० हजार वर्गकिलोमीटरमें फैला हुआ है। इसी प्रकार गंगाकी एक सहायक नदी महानन्दा बाँगलादेशमें बहती है, जिसका आवाह-क्षेत्र ९००० वर्गकिलोमीटर है। अगर उन्हें भारत-स्थित गांगेय (गंगा बेसिन) क्षेत्रके साथ जोड़कर देखा जाय, तो गंगाका कुल आवाह-क्षेत्र लगभग १०,६०,००० वर्गकिलोमीटरतक जा पहुँचता है।

गंगाके बेसिनकी मिट्टी खेती-किसानीके लिहाजसे अतीव उर्वरा है। यहाँकी जलवायु कृषिके लिये सर्वथा अनुकूल है। यही कारण है कि गांगेय क्षेत्र देशका सबसे बड़ा कृषियोग्य भूभाग है। देशकी आबादीके लगभग ३८ प्रतिशत लोग इसी क्षेत्रमें रहते हैं। बेसिनकी कुल

आबादीके लगभग २० प्रतिशत लोग शहरी और कस्बाई अंचलोंमें रहते हैं। बाकी बचे लगभग ८० प्रतिशत लोग अभी भी ग्रामीण और खेतिहर इलाकोंमें रह रहे हैं। यहाँ आबादीका घनत्व लगभग ३०० व्यक्ति प्रति वर्गकिलोमीटर है, जबकि समूचे देशकी आबादीका घनत्व २०० व्यक्ति प्रति वर्गकिलोमीटरके आस-पास होगा।

संसारके सबसे बड़े डेल्टा गंगा और ब्रह्मपुत्रके मुहानोंपर अवस्थित हैं, जिनका क्षेत्रफल कुल मिलाकर लगभग १लाख २५ हजार वर्गकिलोमीटर है। ज्ञातव्य है कि गंगा-ब्रह्मपुत्र डेल्टा-क्षेत्र नील, मिसिसिपी, पो, वोल्गा और यांग-टी-सिकियांग-जैसी बड़ी नदियोंके जगद्विख्यात डेल्टाओंसे कहीं अधिक विस्तृत है।

भारतीय उपमहाद्वीपमें स्थित सिन्धु-गंगाका मैदान पश्चिम-एशियाई दजला-फरातके मैदान तथा उत्तर-पूर्व अफ्रीकामें विद्यमान नीलकी घाटीको मात देनेवाला अतिशय समृद्धिशाली, सुरुचिसम्पन्न और विकसित क्षेत्र रहा है, जहाँ समुन्नत समाज, ऊर्जावती संस्कृति एवं मुक्तितरंगिणी अध्यात्मविद्याका उन्मेष हुआ था। गंगाका बहुलांश भारतवर्षके हृत्प्रदेशमें प्रवहमान है। गंगाकी ज्यादातर सहायक नदियाँ उसके साथ यहीं सम्मिलन भी करती हैं। नारदपुराणकी उद्घोषणा है—'वे देश, वे जनपद, वे पर्वत और वे आश्रम भी धन्य हैं, जिनके समीप सदा पुण्यसलिला भागीरथी बहती हैं—

ते देशास्ते जनपदास्ते शैलास्तेऽपि चाश्रमाः।
येषां भागीरथी पुण्या समीपे वर्तते सदा॥

(नारदपुराण उत्तर० ३८।८)

सर्वतीर्थमयी हैं गंगा—तीर्थसेवनके निमित्त भीतरके भावकी शुद्धताका होना नितान्त आवश्यक है। शुद्ध अन्तःकरण या पवित्र भावसे जो तीर्थसेवन करते हैं, उनके लिये वस्तुतः कुछ भी अलभ्य नहीं रह जाता। ज्यों-ज्यों व्यक्तिका मानसिक मल धुलता जाता है, त्यों-त्यों वह निर्मल होता रहता है। अन्तःकरणकी आत्यन्तिक विशुद्धिके साथ तीर्थसेवन 'सोनेमें सुहागा' जैसा हो जाता है। 'तीर्थ'का शाब्दिक अर्थ है—वह पावन स्थल जिसका संस्पर्श करनेपर मनुष्य इस दुस्तर संसारसे तर जाता है। पण्डित जानकीनाथ शर्माने 'तीर्थ' शब्दकी व्युत्पत्तिपर प्रकाश डालते हुए लिखा है—

'**तॄ-प्लवनतरणयोः**' धातुसे '**पातृतुदिवचिरि-चिसिचिभ्यस्थक्**' इस उणादि सूत्रद्वारा 'थक्' प्रत्यय करनेपर '**तीर्यते अनेन** (इससे तर जाता है') इस अर्थमें 'तीर्थं' या अर्धर्चादिसे 'तीर्थः' शब्द भी निष्पन्न होता है।

समस्त जगत्में गंगासे बढ़कर कोई तीर्थ नहीं है। महाभारतमें उद्घोष किया गया है कि गंगाके सदृश कोई तीर्थ नहीं है (**न गंगासदृशं तीर्थं**)। नारसिंहपुराणमें गंगाको सर्वतीर्थमयी बताया गया है (**सर्वतीर्थमयी गंगा**)। नारदपुराणमें कहा गया है—'सत्ययुगमें सब तीर्थ उत्तम हैं। त्रेतामें पुष्करतीर्थ सर्वोत्तम है, द्वापरमें कुरुक्षेत्रकी विशेष महिमा है और कलियुगमें गंगा ही सबसे बढ़कर हैं। कलियुगमें सब तीर्थ स्वभावतः अपनी-अपनी शक्ति गंगामें छोड़ते हैं, परंतु गंगा अपनी शक्ति कहीं नहीं छोड़ती।' इस संदर्भमें नारदपुराणके अग्रलिखित श्लोक द्रष्टव्य हैं—

कृते तु सर्वतीर्थानि त्रेतायां पुष्करं परम्।
द्वापरे तु कुरुक्षेत्रं कलौ गङ्गा विशिष्यते॥
कलौ तु सर्वतीर्थानि स्वं स्वं वीर्यं स्वभावतः।
गङ्गायां प्रतिमुञ्चन्ति सा तु देवी न कुत्रचित्॥

(नारदपुराण, उत्तर० ३८।२०-२१)

भारतवर्षमें उल्लेखनीय महत्त्वके जितने भी अग्रणी तीर्थ हैं, उनमेंसे अधिसंख्य प्रायः गंगाके तटवर्ती हैं। देशके विश्वविश्रुत चार धामों (बदरीनाथ, जगन्नाथपुरी, द्वारका एवं रामेश्वर)-मेंसे एक धाम बदरीनाथ गंगासे प्रत्यक्षतः संलग्न है। पर्वतराज हिमालयके केदार नामक शृंगके पूर्वकी ओर अलकनन्दाके सुरम्य तटपर बदरीनारायण अवस्थित हैं और पश्चिममें मन्दाकिनीके किनारे केदारनाथ विराजमान हैं। अलकनन्दा और मन्दाकिनी—ये दोनों नदियाँ रुद्रप्रयागमें मिल जाती हैं और देवप्रयागमें इनकी संयुक्त धारा गंगोत्तरीसे निकलकर आयी हुई भागीरथी गंगाका आलिंगन करती हैं। द्वादश ज्योतिर्लिंगोंमें केदारेश्वर और विश्वेश्वर गंगातटवर्ती हैं। केदारेश्वर (केदारनाथ)

मन्दाकिनीके तटपर अवस्थित हैं और विश्वेश्वर (विश्वनाथ) वाराणसी या काशीमें गंगातटवासी हैं। भगवान् शिवके ज्योतिर्लिंग त्र्यम्बकेश्वर तथा गोदावरीके रूपमें गंगाका अवतरण सहवर्ती है। शिवपुराणके अन्तर्गत कथा है कि पत्नीसहित गौतम ऋषिकी आराधनासे प्रसन्न होकर भगवान् शिव वहाँ शिवा और प्रमथगण समेत प्रकट हो गये, साथमें भगवती गंगा भी। देवगण और महर्षि गौतमके प्रार्थना करनेपर भगवान् शंकर और देवनदी गंगा दोनों वहाँ स्थित हो गये। भगवान् शिवका ज्योतिर्लिंग त्र्यम्बक कहलाया और गंगा गौतमी नामसे विख्यात हुईं।

भारतवर्षके सांस्कृतिक, आध्यात्मिक एवं धार्मिक जीवनमें सात पुरियोंका विशेष स्थान है। उन्हें मोक्षदा कहा गया है। वे सात पुरियाँ हैं—काशी, कांची, माया (गंगाद्वार/मोक्षद्वार, कनखलसे हरिद्वार एवं ऋषिकेश होते हुए लक्ष्मणझूलातक मायापुरीका विस्तार), द्वारका, मथुरा तथा अवन्तिका (**काशी काञ्ची च मायाख्या त्वयोध्या द्वारवत्यपि। मथुरावन्तिका चैताः सप्तपुर्योऽत्र मोक्षदाः॥**) ध्यान देनेकी बात है कि सप्त पुरियोंमेंसे दो काशी और माया गंगाकी तटवर्तिनी हैं। वायुपुराणके अनुसार देवलोक, पृथिवी और अन्तरिक्षमें कुल मिलाकर साढ़े तीन करोड़ तीर्थ हैं। ये सारे तीर्थ त्रिपथगा गंगामें हैं और वहींसे निःसृत होकर सम्पूर्ण ब्रह्माण्डमें परिव्याप्त हैं—

तिस्रः कोट्योऽर्द्धकोटी च तीर्थानां वायुरब्रवीत्।
दिवि भूम्यन्तरिक्षे च तानि ते सन्ति जाह्नवि॥

कहनेका तात्पर्य यह है कि समस्त तीर्थोंके पुंजके रूपमें गंगाकी महत्ता है। नदियोंमें गंगाकी ही सर्वप्रधानता एवं महामहनीयता है; क्योंकि वह सर्वतीर्थमयी हैं और समस्त तीर्थोंमें मूर्धन्या हैं। जिस प्रकार मन्त्रोंमें ॐकार, धर्मोंमें अहिंसा, कमनीय वस्तुओंमें लक्ष्मी, विद्याओंमें आत्मविद्या और मातृशक्तियोंमें गौरी देवी उत्तम हैं, उसी प्रकार सम्पूर्ण तीर्थोंमें गंगाका माहात्म्य सर्वोपरि है। स्कन्दपुराणके अन्तर्गत काशीखण्ड-पूर्वार्धमें दिये गये स्तोत्रका समापन श्लोक कहता है कि हे गंगे! आप ही मूल प्रकृति हैं, आप ही परमपुरुष हैं, आप ही परमात्मा एवं आप ही शिव हैं; शिवे! आपको नमस्कार है—

त्वमेव मूलप्रकृतिस्त्वं पुमान् पर एव हि।
गङ्गे त्वं परमात्मा च शिवस्तुभ्यं नमः शिवे॥

गंगा प्रत्यक्ष देवता हैं। इसीलिये उनकी गणना नित्य तीर्थोंमें प्रमुखतासे की जाती है। वे सच्चे अर्थोंमें भुक्तिमुक्तिप्रदा हैं। जो लोग गंगाका आश्रय लेते हैं, उन्हें भोग और मोक्ष सहज ही प्राप्त हो जाते हैं। गंगाकी महिमाका वर्णन करते हुए स्कन्दपुराणमें कहा गया है—

अनिच्छयापि संस्पृष्टो दहनो हि यथा दहेत्।
अनिच्छयापि संस्नाता गङ्गा पापं तथा दहेत्॥

(जिस प्रकार बिना इच्छाके भी स्पर्श करनेपर आग जला ही देती है, उसी प्रकार अनिच्छासे भी स्नान करनेपर गंगा मनुष्यके पापोंको भस्म कर देती है।)

चतुर्दश प्रयाग एवं गंगा— भारतवर्षमें तीर्थस्थल और जलस्रोतके बीच अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। हमारे यहाँ प्रायः सभी तीर्थस्थान नदियों, सरोवरों, कूपों, कुण्डों, तडागों आदिसे अभिन्न रूपोंमें जुड़े हुए हैं। वह मिलन-बिन्दु अत्यन्त महनीय, पूजनीय या वन्दनीय समझा जाता है, जहाँ दो पुण्यगर्भा नदियोंका संगम होता है। जहाँ दो जलधाराएँ परस्पर सम्मिलन करते हुए समरस या एकाकार होकर आगे बढ़ती हैं, वह दृश्य परम आनन्ददायक, रम्य और रुचिर होता है। दो नदियोंका संगम तीर्थरूप हो जाता है।

राजा भगीरथकी तपस्याके फलस्वरूप स्वर्गसे धरतीपर गंगाका अवतरण हुआ था। गंगाकी अपार जलराशि और प्रचण्ड वेगधारासे पृथिवीको बचानेके निमित्त भगवान् शंकरने अपनी जटाओंमें गंगाको धारण किया और समेटा। उनकी जटाओंसे गंगाकी अनेक छोटी-छोटी यानी बेहद पतली जलधाराएँ फूट पड़ीं, जो आगे चलकर परस्पर सम्मिलन करती हुई एक मुख्यधाराके रूपमें बहने लगीं।

उत्तराखण्डमें गंगाकी दो धाराएँ जहाँ-जहाँ मिली हैं, उन संगमस्थलोंको प्रयाग कहा गया है। ऐसे १३ प्रयाग उत्तराखण्डमें विराजमान हैं। इन प्रयागोंकी संस्थिति

इस प्रकार है—

क्र.	प्रयाग	संगम-स्थल
१.	रुद्रप्रयाग	अलकनन्दा एवं मन्दाकिनी
२.	देवप्रयाग	भागीरथी एवं अलकनन्दा
३.	कर्णप्रयाग	पिण्डरगंगा एवं अलकनन्दा
४.	विष्णुप्रयाग	विष्णुगंगा एवं अलकनन्दा
५.	सोमप्रयाग	सोमनदी एवं मन्दाकिनी
६.	हरिप्रयाग	हरिगंगा एवं भागीरथी
७.	भास्करप्रयाग	असिगंगा एवं भागीरथी
८.	श्यामप्रयाग	श्यामगंगा एवं भागीरथी
९.	इन्द्रप्रयाग	भागीरथी एवं नवालिका गंगा (व्यासगंगा)
१०.	सूर्यप्रयाग	अलसतरंगिणी गंगा एवं मन्दाकिनी
११.	गुप्तप्रयाग	नीलगंगा एवं भागीरथी
१२.	नन्दप्रयाग	अलकनन्दा एवं नन्दा
१३.	केशवप्रयाग	अलकनन्दा एवं सरस्वती

उत्तराखण्डके अन्तर्गत उपर्युक्त १३ प्रयागोंका सिरमौर गंगा,यमुना एवं अन्त:सलिला सरस्वतीके संगमस्थलके परित: त्रिवेणी-क्षेत्रमें विराजमान है, जो प्रयागराजके नामसे त्रिभुवन-विख्यात है। यों तो गंगासे बढ़कर कोई भी तीर्थ नहीं है, तथापि गंगोत्तरी, प्रयाग और गंगासागरमें वह 'दुर्लभा' कही गयी है—

सर्वत्र सुलभा गङ्गा त्रिषु स्थानेषु दुर्लभा।
गङ्गोद्भेदे प्रयागे च गङ्गासागरसङ्गमे॥

हिमालयमें ही गंगा और यमुनाकी धाराएँ एकाकार हो गयी होतीं, यदि उनके बीचमें दण्ड पर्वत न आ जाता। देहरादूनके समीप दोनों नदियाँ बहुत पास आ जाती हैं। दरअसल यह गौरव उस पावन स्थलको मिलना था, जहाँ लोकपितामह ब्रह्माने सृष्टिके आदिमें प्रकृष्ट यज्ञादि किये थे। उत्तराखण्डके प्रयागोंमें गंगाकी ही दो जलधाराओंका परस्पर सम्मिलन होता है, जबकि तीर्थराजमें गंगा और यमुनाका संगम। उत्तराखण्डके संगम-स्थल प्रयाग कहलाते हैं, जबकि तीर्थराजका संगम प्रयागराज।

बोध-कथा—

आपसी विरोधसे अनर्थ

एक व्याधने पक्षियोंको फँसानेके लिये अपना जाल बिछाया! उसके जालमें दो पक्षी फँसे; किंतु उन पक्षियोंने झटपट परस्पर सलाह की और जालको लेकर उड़ने लगे। व्याधको यह देखकर बड़ा दु:ख हुआ। वह उन पक्षियोंके पीछे भूमिपर दौड़ने लगा।

कोई ऋषि अपने आश्रममें बैठे यह दृश्य देख रहे थे।

उन्होंने व्याधको समीप बुलाकर पूछा—'तुम व्यर्थ क्यों दौड़ रहे हो? पक्षी तो जाल लेकर आकाशमें उड़ रहे हैं।'

व्याध बोला—'भगवन्! अभी इन पक्षियोंमें मित्रता है। वे परस्पर मेल करके एक दिशामें उड़ रहे हैं। इसीसे वे मेरा जाल लिये जा रहे हैं। परंतु कुछ देरमें इनमें झगड़ा हो सकता है। मैं उसी समयकी प्रतीक्षामें इनके पीछे दौड़ रहा हूँ। परस्पर झगड़कर जब ये गिर पड़ेंगे, तब मैं इन्हें पकड़ लूँगा।'

व्याधकी बात ठीक थी। थोड़ी देर उड़ते-उड़ते जब पक्षी थकने लगे, तब उनमें इस बातको लेकर विरोध हो गया कि उन्हें कहाँ ठहरना चाहिये। विरोध होते ही उनके उड़नेकी दिशा और पंखोंकी गति समान नहीं रह गयी। इसका फल यह हुआ कि वे उस जालको सँभाले नहीं रख सके। जालके भारसे लड़खड़ाकर स्वयं भी गिरने लगे और एक बार गिरना प्रारम्भ होते ही जालमें उलझ गये। अब उनके पंख भी फँस चुके थे। जालके साथ वे भूमिपर गिर पड़े। व्याधने उन्हें सरलतापूर्वक पकड़ लिया।

गो-चिन्तन—

गोरक्षा शिवधर्म है

(काशी श्रीजगद्गुरुविश्वाराध्य-ज्ञानसिंहासनाधीश्वर वीरभद्र शिवाचार्य महास्वामी महाराज)

गोपतिवाहन श्रीशिवजीके गोप्रेमके बारेमें अधिक लिखना नहीं है, शिवजी गोरक्षाको आत्मधर्म ही मानते हैं। **'शिवस्य तत्त्वं शिव एव वेत्ति नन्दी च विष्णुर्नगजा कुमारः'**—इस प्रमाणके अनुसार शिवधर्मवेत्ताओंमें नन्दीका प्रमुख स्थान है; नन्दी भी ईश्वरसे अभिन्न माने जाते हैं, तभी तो 'नन्दीश्वर' शब्द प्रचलित हुआ है। मन्दिरोंमें शिवलिंगमूर्ति (ज्योतिर्गोलाकार)-की प्रतिष्ठा प्रसिद्ध ही है, उस जगह सर्वत्र शिवके अग्रभागमें पहले नन्दीका और पीछे शंकरका दर्शन करना होता है। नन्दी स्वयं धर्मस्वरूपी होनेके कारण उनका यह सम्मान स्वाभाविक है। मन्दिरोंमें भारतीयोंको कैसी सुन्दर शिक्षा मिलती है! एक वृत्तान्त शैवोंमें बहुत प्रसिद्ध है—

सृष्टिके आरम्भकालमें नन्दी शिवाज्ञानुसार भूतलपर मानवोंको ऐसा उपदेश देनेके लिये आये कि 'प्रतिदिन अभ्यंग-स्नानादिकर ईश्वरार्चन अवश्य करें और पन्द्रह दिनोंमें एक बार भोजन करें।' किंतु नन्दीसे भूल हो गयी, उन्होंने 'प्रतिदिन खाने और पन्द्रह दिनमें एक बार अभ्यंग न करने'की बात लोगोंको बतायी। नन्दीने लौटकर जब कैलासमें यह समाचार दिया, तब शिवजीने महारुद्र होकर उन्हें फटकारा और इस अपराधके प्रायश्चित्तमें नन्दीको यह आज्ञा दी कि 'तुमको अपनी नन्दिनी गौके साथ भूलोकमें अवतार लेना होगा और गो-सन्तति बढ़ाकर, खेती-बारीद्वारा मानवोंको खिला-पिलाकर उनका संरक्षण करना होगा।' बस, उसी समयसे नन्दा (नन्दिनी) अपने नन्दीके साथ भूलोकवासिनी हो गयी।

कथाका तात्पर्य तो स्पष्ट है, मानवोंका पालन-पोषण-भार गो-सन्ततिपर है यानी गो-माताका अवतार मानवोंके कल्याणनिमित्त हुआ है। मूल रहस्य तो यह है कि गो-सन्तति विश्वके माता-पिता हैं, इनमें महादेवके प्रतिनिधि नन्दी और महाविष्णुकी प्रतिनिधि गौ है; इस तरह शिव और शक्ति ऐक्यरूपसे जगत्का संचालन करते हैं। प्राचीन मानवोंके लिये यह कोई रहस्य नहीं था, किंतु सर्वसाधारण ज्ञान था। इसी कारण गौका उतना आदर और महत्त्व रहा; कहीं गोधनका अनिष्ट देख पड़ता तो प्राणोंकी बाजी लगाकर उसे दूर कर दिया जाता था। आज भी अपने देशमें गोभक्तोंकी संख्या थोड़ी-बहुत है ही; किंतु गोरक्षणका सार्वभौम नहीं तो भारतव्यापी संघटित उद्यमरूपसे कार्य होना चाहिये। गोपालनसे महापुण्य मिलता है और स्वकुलका उद्धार भी होता है, इसमें कोई सन्देह नहीं। यह अदृष्ट फल है, किंतु गोपालनसे स्वार्थ भी बहुत-कुछ सिद्ध होता है—कम-से-कम इस दृष्टिसे भी गो-सन्ततिवर्धन बड़ा महत्त्व रखता है।

आधुनिक पाश्चात्त्य शिक्षित लोग अपनेको सर्वोत्तम सभ्य समझते हैं और अणुस्फोट (ऐटम बम)-जैसे महापदार्थको पाकर फूले नहीं समाते; किंतु दूध,दही, मलाई, मक्खन, मट्ठा-जैसे अमृतको गौओंके सिवा अपने रासायनिक पाण्डित्यसे ये लोग पा नहीं सकते। इतनी भारी हार खाकर भी ये गोभक्षण-जैसे अपवित्र, अर्थशास्त्रविरुद्ध और युक्तिहीन कर्म करते हैं—यह कम आश्चर्यकी बात नहीं है। शाकाहारकी ओरसे इन शिक्षित लोगोंका उदासीन होना आत्मवंचनाके सिवा और कुछ नहीं है।

शिवभक्तके लिये गौ प्राण है। वीरशैवसम्प्रदाय (शिवलिंगधारी)-की सारी जनसंख्या (साठ लाख) केवल शाकाहारी, अहिंसक और गोधनप्रेमी है; इस सम्प्रदायके सभी वर्णोंका शाकाहारी होना एक असाधारण बात है, इसमें एक महत्त्वपूर्ण धार्मिक कारण भी है।

भूति, रुद्राक्ष, मन्त्र, गुरु, लिंग, जंगम, पादतीर्थ और प्रसाद—ये आठ वीरशैवोंके आवरण हैं। प्रथम आवरण जो भूति है, वह विभूति, भसित, भस्म, क्षार और रक्षा नामसे पाँच प्रकारकी है। इन पाँच प्रकारके भस्मोंकी उत्पत्ति नन्दा, भद्रा, सुरभि, सुशीला और सुमना नामक पाँच प्रकारकी गौओंसे मानी गयी है; और इन पवित्र पाँच गौओंकी उत्पत्ति शिवाजीके सद्योजात, वामदेव, अघोर, तत्पुरुष एवं ईशान नामक पाँच मुखोंसे मानी जाती है—

नन्दा भद्रा च सुरभिः सुशीला सुमनास्तथा।
पञ्च गावो विभोर्जाताः सद्योजातादिवक्त्रतः॥

(सिद्धान्तशिखामणि ७। ४६)

वीरशैवसम्प्रदायके आदि प्रवर्तक श्रीरेणुक, दारुक, एकोराम, पण्डिताराध्य और विश्वाराध्य नामक पंचाचार्योंकी आदिम उत्पत्तिका भी शिवजीके उन्हीं पाँच मुखोंसे होना ये मानते हैं, जहाँसे गोदेवीका उद्‌गम हुआ है। इसी हेतु इस समाजमें गोभक्तिका उज्ज्वल प्रकाश विद्यमान है। कर्णाटक प्रान्तके हर एक ग्राममें नन्दिमन्दिर (बसबनगुडि)-का दर्शन आप पायेंगे और इनके किसी शुभ कार्यमें नन्दिध्वज (नन्दिकोल)-का उत्सव भी देखनेको मिलेगा। प्राचीन शैव राजाओंकी शिबिकाओंपर नन्दीकी छाप तो प्रसिद्ध है; जमीनके सीमाप्रस्तरों और विवाह-निमन्त्रणपत्रोंपर भी लिंग-नन्दिमुद्राओंकी कल्पना ये लोग भूलते नहीं। इन दृढ़ शिवभक्तोंके लिये गो-सन्तति पूजनीय विभूति और महान् ऐश्वर्य है। 'हम गौओंके लिये हैं और गौ हमारे हितके निमित्त हैं; जिधर गौ रहेगी, उधर हम रहेंगे'—

गावोऽस्माकं वयं तासां यतो गावस्ततो वयम्।

इस महामन्त्रकी भावना सत्य और विज्ञानमूलक है। गोमय-गोमूत्रसे और गोष्ठकी हवासे भी अद्भुत कल्याण होता है, फिर कृषि-वाणिज्यादिमें गौकी उपकारिता और दानादिमें गौकी महत्ताका क्या कहना! मानवोंके समस्त हित गोमूलक हैं। अतः गोरक्षा शिवधर्म ही है।

गोपालन आदि वैश्योंके मुख्य धर्म होनेपर भी सभी वर्णोंके लिये हितकर हैं। आज विश्वमें अर्थशास्त्रावलम्बन विशेष देख पड़ता है, इस दृष्टिसे भी गोधन-वर्धन सर्वमानवकर्तव्य अवश्य होना चाहिये; क्योंकि गोसंख्याका क्षय संसारका प्रलय है और गो-सन्ततिका अधिकोदय विश्वका अभ्युदय है—

गोशालास्तु प्रतिग्रामे गोभक्तः स्युः समे जनाः।
गावो यतः श्रियो मूलं पुण्यस्वास्थ्यसुखप्रदाः॥

बोध-कथा—

दूषित अन्नका प्रभाव

महाभारतका युद्ध समाप्त हो गया था। धर्मराज युधिष्ठिर एकच्छत्र सम्राट् हो गये थे। श्रीकृष्णचन्द्रकी सम्मतिसे रानी द्रौपदी तथा अपने भाइयोंके साथ वे युद्धभूमिमें शरशय्यापर पड़े प्राणत्यागके लिये सूर्यके उत्तरायण होनेकी प्रतीक्षा करते परम धर्मज्ञ भीष्मपितामहके समीप आये थे। युधिष्ठिरके पूछनेपर भीष्मपितामह उन्हें वर्ण, आश्रम तथा राजा-प्रजा आदिके विभिन्न धर्मोंका उपदेश कर रहे थे। यह धर्मोपदेश चल ही रहा था कि रानी द्रौपदीको हँसी आ गयी।

'बेटी! तू हँसी क्यों?' पितामहने उपदेश बीचमें ही रोककर पूछा।

द्रौपदीजीने संकुचित होकर कहा—'मुझसे भूल हुई। पितामह मुझे क्षमा करें।'

पितामहका इससे सन्तोष होना नहीं था। वे बोले—'बेटी! कोई भी शीलवती कुलवधू गुरुजनोंके सम्मुख अकारण नहीं हँसती। तू गुणवती है, सुशीला है। तेरी हँसी अकारण हो नहीं सकती। संकोच छोड़कर तू अपने हँसनेका कारण बता।'

हाथ जोड़कर द्रौपदीजी बोलीं—'दादाजी! यह बहुत ही अभद्रताकी बात है; किंतु आप आज्ञा देते हैं तो कहनी पड़ेगी। आपकी आज्ञा मैं टाल नहीं सकती। आप धर्मोपदेश कर रहे थे तो मेरे मनमें यह बात आयी कि 'आज तो आप धर्मकी ऐसी उत्तम व्याख्या कर रहे हैं; किंतु कौरवोंकी सभामें जब दुःशासन मुझे नंगी करने लगा था, तब आपका यह धर्मज्ञान कहाँ चला गया था। मुझे लगा कि यह धर्मका ज्ञान आपने पीछे सीखा है। मनमें यह बात आते ही मुझे हँसी आ गयी, आप मुझे क्षमा करें।'

पितामहने शान्तिपूर्वक समझाया—'बेटी! इसमें क्षमा करनेकी कोई बात नहीं है। मुझे धर्मज्ञान तो उस समय भी था; परंतु दुर्योधनका अन्यायपूर्ण अन्न खानेसे मेरी बुद्धि मलिन हो गयी थी, इसीसे उस द्यूतसभामें धर्मका ठीक निर्णय करनेमें मैं असमर्थ हो गया था। परंतु अब अर्जुनके बाणोंके लगनेसे मेरे शरीरका सारा दूषित रक्त निकल गया है। दूषित अन्नसे बने रक्तके शरीरसे बाहर निकल जानेके कारण अब मेरी बुद्धि शुद्ध हो गयी है; इससे इस समय मैं धर्मका तत्त्व ठीक समझता हूँ और उसका विवेचन कर रहा हूँ।'

तुलसी रामायण और तेलुगुका गोपीनाथ रामायणम्

(डॉ० श्री ए०बी० साई प्रसाद)

कहते हैं कि वीरगाथाकालके कवि चन्दबरदाईका जन्म और मरण उनके अन्नदाता एवं सखा पृथ्वीराज चौहानके साथ-साथ हुआ था। ठीक ऐसी ही घटना गोपीनाथ रामायणम्के रचनाकार गोपीनाथुनि वेंकय्याके साथ घटी। सन् १८९२ के जून महीनेकी छः तारीखको वेंकटगिरिके राजा कुमार याचम नायडूका गोलोकवास हुआ था। अपने अन्नदाता, सखा एवं मार्गदर्शकको अश्रुतर्पण समर्पित करनेके लिये वेंकय्या राजमहल गये। सखाको जो कि आयुमें उनसे अठारह साल छोटे थे, इस संसारसे पहले विदा होते देखकर उनका दिल बैठ गया। शय्याके फेरे लगाकर वे अपने घर लौटे। रातको सोये, फिर उठे नहीं। सुबह लोगोंने जाना कि कवि अपने सखा, मित्र एवं हितचिन्तककी खोजमें अनन्तकी ओर निकल पड़े हैं।

श्रीवेंकय्या शास्त्रीजीका जन्म एक सम्पन्न परिवारमें हुआ था। जैसे तुलसीदासजीपर शिवजीकी विशेष कृपा थी, ठीक इसी प्रकार श्रीवेंकय्या शास्त्रीपर भगवान् श्रीकृष्णकी विशेष कृपा थी। वेंकय्या शास्त्री साधु-सन्त एवं भजनप्रिय थे। आसपास जहाँ भी भजनका आयोजन हुआ करता था, वेंकय्या शास्त्री बिना बुलाये वहाँ पहुँच जाया करते थे। एक बारकी बात है, शास्त्रीजी उस समय सोलह वर्षके थे। पास ही नरसिंहुलु कोण्डा वेदगिरिपर मेला लगा था, वे भी मेला देखने गये थे। वहाँ उनकी भेंट एक वैरागीसे हुई। वैरागीने उन्हें कुछ सिखाया। इसका जिक्र अपने रामायणमें वेंकय्या शास्त्रीने किया है। पर उन्होंने यह नहीं लिखा है कि वैरागीने उनको क्या सिखाया था। कहते हैं कि इस गुप्त विद्याके कारण ही उन्होंने अल्पवयमें रामायणकी रचना कर डाली थी।

महान् रचनाएँ भगवत्कृपाके बिना सम्पन्न नहीं होतीं। तुलसीके प्रेरणास्रोत हनुमान्जी और स्वयं महादेवजी थे। ठीक इसी प्रकार वेंकय्यासे श्रीकृष्णने स्वप्नमें प्रत्यक्ष होकर इस प्रकार कहा था—**'येनु कृष्णुण्ड पवित्रंवुलैन मदीय दिव्यावतार चरित्रंबुललों नी कभीष्ट मेय्यदि दानि मयंकिन्तबुग'** (गो०रा० पीठिका) अर्थात् 'मैं कृष्ण हूँ। मेरे पवित्र अवतारोंमें-से तुम्हारे लिये जो कथा अभीष्ट है, उसे आन्ध्रभाषामें लिखकर मेरे नामपर समर्पित करो। विविध रूपोंसे इस कार्यको सम्पन्न करानेका भार मैं अपनेपर लूँगा। तुम्हारे द्वारा रचित इस काव्यको मेरे अनुग्रहसे यश और प्रगति दोनों मिलेगी। इस जन्मके बाद जन्म और मरणके कालचक्रसे तुम मुक्त हो जाओगे।

धर्मार्थ-काम-मोक्षप्रदायक रामायणका तेलुगुमें अनुवादकर श्रीवेंकय्या शास्त्री सोचमें पड़ गये कि भला इसका प्रचार कौन करेगा? संयोगकी बात है कि वेंकटगिरि जिला नेल्लूर आन्ध्रप्रदेशके राजा श्रीवेलुगोटि कुमार याचम नायडू एक ऐसे कविवरकी तलाशमें थे, जिन्होंने रामायणका आन्ध्रानुवादकर अपने अनुवादको भगवान्के नामपर अर्पण किया हो। इस प्रकार राजाको सत्कविकी और कविको धर्मप्राण सुयोग्य राजाकी प्राप्ति हो गयी।

'जननम्बादिगा रामपद युगलती संसक्त चिन्तुडु' अर्थात् जन्मसे रामके चरण-युगलमें अनुरक्त वेंकय्या शास्त्री अपनी युवावस्थामें अपनी उसूलोंके बहुत पक्के थे। भगवान्को छोड़कर किसी मनुष्यको वे अपने काव्यका विषय बनानेके पक्षमें नहीं थे। रामायणको कृष्णके नामपर और कृष्णकथा राधा कृष्णुल चरित्रको रामके नामपर इन्होंने अर्पित किया था।

श्रीरामचरितमानसकी तुलनामें गोपीनाथ रामायण अपेक्षाकृत आधुनिक रचना है। इस महान् रचनाके पीछे श्रीकृष्णका आदेश, एक वैरागीका उपदेश और वाल्मीकिका अनुग्रह है। तुलसीदास नानापुराणनिगमागमसम्पन्न होते हुए भी कहते हैं—***'कबि न होउँ नहिं बचन प्रबीनू। सकल कला सब बिद्या हीनू॥'*** और ***'कबित बिबेक एक नहिं मोरे। सत्य कहउँ लिखि कागद कोरे॥'*** ठीक इसी प्रकार संस्कृतके उद्भट विद्वान् होते हुए भी

वेंकय्या सविनय कहते हैं—**'नाचेरिंगनन्त तेटपरिचद नत्यादरंबुन।'** (गो०रा० पीठिका) अर्थात् जितना मैं जानता हूँ सिर्फ उतना ही आदरके साथ समझाऊँगा।

ध्यान देनेकी बात है कि काण्डोंकी संख्या तुलसीरामायणमें सात है। तुलसीके रामायणका प्रारम्भ बालकाण्डसे होता है, जबकि श्रीवेंकय्या शास्त्री रामायणका आरम्भ लवकुशद्वारा रामकथागायन अर्थात् उत्तरकाण्डसे करते हैं। श्रीवेंकय्याजीके रामायणमें सिर्फ छः काण्ड हैं।

गोपीनाथ रामायणके बालकाण्डमें पहले पचपन पृष्ठोंमें वाल्मीकिकी कथा, कुश-लवद्वारा रामायण-गान, पुत्रकामेष्टि यागकी आयोजना, रावणके अत्याचारोंका वर्णन, ब्रह्मासे देवतागणका रावणसे त्राण दिलानेकी प्रार्थना करना इत्यादि है। नामकरणतक कथा साठ पृष्ठोंके बाद पहुँचती है। वेंकय्या शास्त्रीका एकमात्र उद्देश्य कथाका वर्णन है। तुलसीकी दृष्टि भिन्न रही है। तुलसीके समयतक मुसलमान शासनके क्षेत्रमें अपनी जड़ोंको मजबूत कर चुके थे। वे लोगोंको असहनीय और अकथनीय दुःख देने लग गये थे। अपने काव्यमें इन सबका वर्णन वे करना चाहते थे। इसलिये रावण लोगोंपर कैसे अत्याचार किया करता था, उसका वर्णन इन शब्दोंमें कर वे लोगोंको जाग्रत् करनेकी कोशिश करते हैं, देखिये—

जेहि बिधि होइ धर्म निर्मूला। सो सब करहिं बेद प्रतिकूला॥
बरनि न जाइ अनीति घोर निसाचर जो करहिं।
हिंसा पर अति प्रीति तिन्ह के पापहि कवनि मिति॥

अनुवाद होनेके कारण, परिस्थितियोंके बदल जानेके कारण और अपने कुछ सामाजिक बन्धनोंके कारण वेंकय्या शास्त्री अपने समयके भारतका वर्णन कर नहीं पाये हैं। फिर भी निम्नलिखित वाक्यमें एक प्रयोग ऐसा है, जिसे देखकर हमें लगता है कि कवि वेंकय्या अपने समयकी परिस्थितियोंके बारेमें कह रहे हैं—**जगमुलन जीकाकु चेसेन दीन जनोको त्रास करने लगा है। पुरमुल वाकिल्लं देरूव वेरचिरेसि जेघुसु मथ्य रमेश मीकु।** (गो०रा०) अर्थात् रमेशजी! हम आपको क्या बतायें, नगरके लोग अपने घरके दरवाजोंको डरके मारे खोल नहीं पा रहे हैं। कवि अपने समयके भारतका जीता-जागता वर्णन कर सकते थे, पर उन्होंने किया नहीं है।

वाल्मीकि रामायणमें रामके जन्मतिथि, नक्षत्र और लग्नका उल्लेख है, पर वारका उल्लेख नहीं है।

ततो यज्ञे समाप्ते तु ऋतूनां षट् समत्ययुः।
ततश्च द्वादशे मासे चैत्रे नावमिके तिथौ॥
नक्षत्रेऽदितिदैवत्ये स्वोच्चसंस्थेषु पंचसु।
ग्रहेषु कर्कटे लग्ने वाक्पताविन्दुना सह॥
प्रोद्यमाने जगन्नाथं सर्वलोकनमस्कृतम्।
कौसल्याजनयद् रामं दिव्यलक्षणसंयुतम्॥

(वा०रा० १।१८।८—१०)

तुलसी राम-जन्मके बारेमें लिखते हैं—

नौमी तिथि मधु मास पुनीता। सुकल पच्छ अभिजित हरिप्रीता॥
मध्य दिवस अति सीत न घामा। पावन काल लोक बिश्रामा॥

वेंकय्याके अनुसार रामजन्म बुधवारको हुआ था।

(गो०रा० बालकाण्ड ४।१६)

नवजात शिशुओंके नामकरणमें वेंकय्याने क्रमका पालन किया है, पर तुलसीने उसका उल्लंघन किया है। राम-भरत और शत्रुघ्नको पहले नाम दिया जाता है। लक्ष्मणका नामकरण अन्तमें होता है। तुलसी लिखते हैं ***'गुरु बसिष्ट तेहि राखा लछिमन नाम उदार।'*** याग-रक्षा और जनकपुर-प्रवेशकी कथा तुलसीने संक्षिप्त की है, पर गोपीनाथ रामायणमें कथाओंका जैसे कि गंगावतरणकी कथा, अहल्या-गौतम और इन्द्रकी कथा, त्रिशंकुकी कथा आदिका भी समावेश है।

अहल्या शाप-विमोचन-प्रसंगमें तुलसीने विवेकके साथ इस घटनाका वर्णन किया। तुलसी इस प्रसंगका वर्णन अध्यात्मरामायणके अनुसार करते हैं। वाल्मीकि रामायणमें शाप-विमोचनके बाद अहल्या जब प्रकट होती हैं, तब राम और लक्ष्मण मुनिपत्नीकी वन्दना करते हैं। अध्यात्मरामायणके अनुसार राम अहल्याका अभिवादन करते हैं। पर तुलसीरामायणमें अहल्या रामका अभिवादन करती है, कारण अहल्यातक पहुँचते-पहुँचते तुलसीके राम भगवान् बन गये थे।

वाटिका-प्रसंग तुलसीरामायणमें आनेवाला एक अद्भुत प्रसंग है। पूर्वरागके प्रयोगके द्वारा सियारामके प्रति तुलसीके मनमें जो श्रद्धा और भक्तिके भाव थे, उनका

वर्णन करते हैं। सियाराम तुलसीके अनुसार महाविष्णु और महालक्ष्मीके अवतार हैं। इसीलिये ***'गिरा अनयन नयन बिनु बानी'*** जैसे शब्दोंका प्रयोग वे करते हैं। गोपीनाथ रामायण वाल्मीकि रामायणका छायानुवाद होनेके कारण उसमें इस प्रकारके वर्णनके लिये कोई गुंजाइश नहीं है। जहाँ तुलसी ***'टूटत ही धनु भयउ बिबाहू'*** कह किस रवके साथ धनुष टूटा था, उसका वर्णन करते हैं। वहीं गोपीनाथ रामायणमें श्रीवेंकय्या तुलसीसे एक पग आगे बढ़कर बताते हैं कि कितनी आसानीसे रामने धनुष तोड़ा था—***'विरिगिन चेर-कुवोले'*** अर्थात् टूटे ईखकी तरह धनुर्भंग हुआ। यह कितनी सुन्दर उपमा है! धनुर्भंगके तुरन्त बाद परशुरामको प्रवेश करवाकर तुलसीने जो उत्कण्ठा पैदा की है, वह वेंकय्या नहीं कर पाये हैं। गोपीनाथ रामायणमें विवाहके बाद जब बारात अयोध्या लौट रही थी, तब परशुराम आते हैं।

अयोध्याकाण्डका आरम्भ श्रीवेंकय्या शास्त्री शत्रुघ्नके मातुलगृह-गमनसे करते हैं। प्रार्थनामें **नवनीतचोरा नन्दकुमारा** कह कृष्णका स्मरण करते हैं। तुलसी **'शर्वः सर्वगतः शिवः शशिनिभः श्रीशङ्करः पातु माम्'** कहते हुए अयोध्याकाण्डका आरम्भ करते हैं। युवराजके पदपर रामको बिठानेका निर्णय कब और कैसे दशरथने लिया, इसका सुन्दर वर्णन तुलसीने किया है। एक दिन मुकुटको ठीक करनेके लिये दशरथजी दर्पण देखते हैं, तब उन्हें कानोंके पास सफेद बाल दिखायी देते हैं। उनका माथा ठनकता है और तुरन्त वे कुलगुरु वसिष्ठके पास राजतिलकका प्रस्ताव ले जाते हैं। राजाके प्रस्तावको वसिष्ठ मान लेते हैं। गुरुकी अनुमति प्राप्तकर दशरथ राजसभामें इसकी घोषणा करते हैं। गोपीनाथ रामायणमें दशरथ राजतिलकसम्बन्धी बातोंपर चर्चा करनेके लिये सभाका आयोजन करते हैं। वे सभासदोंसे कहते हैं—**'ई रामाभिषेक विषयालोचनंबु नाकु मिक्किलि प्रियम्बे युन्नु देन नन्तकण्टे वेरोकटि हितम्बु गलिगेनेनि योचिपुरु'** अर्थात् रामके राजतिलककी बात मेरे लिये अत्यन्त प्रिय है। फिर भी अगर इससे उत्तम हित देनेवाली कोई बात हो, तो उसके बारेमें सोचिये। प्रजातन्त्रका यही सच्चा स्वरूप है।

वनगमनके लिये अनुमति माँगनेवाले रामसे कौसल्या यह कहती हैं ***'जौं केवल पितु आयसु ताता। तौ जनि जाहु जानि बड़ि माता॥'*** यहाँ तुलसी सिद्ध करना चाहते हैं कि माँका स्थान पितासे ऊँचा है। वनगमनकी बात सुनकर कौसल्या गोपीनाथ रामायणमें अपने दुःखोंका वर्णन इन शब्दोंमें करती हैं **'जन विभुनकग्र रानिनै, कनिष्ठ लघु सवतु लेललं गड गर्व मुजन् ननु तूलनाड चुंडंग विनि येगति दालुदान विमल विचारा'** अर्थात् मैं दशरथकी बड़ी रानी हूँ। फिर मुझसे छोटी सौतोंकी जली-कटी बातें कैसे सही जायँगी? इस सन्दर्भमें लक्ष्मण रामसे कहते हैं कि दशरथ कामलोलुप हैं। कौसल्या भी लक्ष्मणका समर्थन करती हैं। वेंकय्याकी कौसल्या भरतपर विश्वास करनेवाली माँ नहीं हैं। पर तुलसीकी कौसल्याके लिये भरत राम-जैसे प्रिय हैं। मातुलगृहसे लौटनेपर भरत कौसल्यासे मिलने आते हैं। भरतको आते देखकर माँ कौसल्याका आँचल ममतासे उमड़ पड़नेके कारण गीला हो जाता है। वेंकय्याकी कौसल्या तुलसीकी कौसल्या-जैसी एक आदर्श माँ नहीं हैं। वनगमनकी बात सुनकर तुलसीकी सीता रामसे प्रार्थना करनेके लिये रामके पास आती हैं। अयोध्यामें ही रहनेके लिये कहनेवाले रामसे सीता कहती हैं—***'पिय बियोग सम दुख जग नाहीं।'*** वेंकय्या अपने रामायणमें सीताको एक युयुत्सुके रूपमें प्रस्तुत करते हैं। अपने प्रकोष्ठमें पहुँचकर वनगमनकी सूचना देकर अयोध्यामें ही बने रहनेकी बात राम सीतासे कहते हैं। उत्तरमें सीता कहती हैं—***'रामा माँ तंड्रि जनकुडु.... नन्नोसंगे'*** (गो०रा०) अर्थात् हे राम! तुम्हारे बाह्य रूप-सौन्दर्यको देखकर मेरे पिताजीने तुम्हें पुरुष समझकर मेरा विवाह तुमसे सम्पन्न किया है। तुलसीकी आदर्श पत्नी सीता रामके पुरुषत्वको कभी भी ललकार नहीं सकती थी।

राम वन-जीवनके डरावने चित्रको सीताके सामने प्रस्तुत करते हैं। इस डरावने वर्णनको सुनकर सीता रामसे कहती हैं 'जब आप साथ हैं तो डर किस बातका?' इस संवादमें तुलसी और वेंकय्या अपनी-

अपनी सीताओंसे एक-जैसे भावोंको व्यक्त कराते हैं। तुलसीकी सीता कहती हैं—***'को प्रभु सँग मोहि चितवनिहारा। सिंघबधुहि जिमि ससक सिआरा॥'*** गोपीनाथुनि वेंकय्याकी सीता भी कहती हैं **'नी मानित वाहु दंडमूल माटुन निलिचिन तनु वासंतु डैननु देरि-चूंडं गलंडा।'** अर्थात् तुम्हारी भुजाओंकी आड़में जब मैं खड़ी रहूँगी, तब क्या इन्द्र भी मेरी तरफ आँख उठाकर देखनेकी जुर्रत कर सकता है?

तुलसीके राम निषादराज गुहको अपने गलेसे लगाते हैं। इस दृश्यके वर्णनके द्वारा तुलसी तत्कालीन समाजमें फैले ऊँच-नीच अथवा जाति-पाँतिके भेदभावका खण्डन करते हैं। रामके चरण-कमलोंको धोनेके लिये जो बहाना गुह ढूँढ़ निकालता है, वह अत्यन्त श्लाघनीय है। यह उदात्तता गोपीनाथ रामायणमें नहीं है।

गुहके द्वारा भरतागमनके समाचारको सुनकर वेंकय्याके लक्ष्मण रामसे कहते हैं।**'भरतुं डोक्कडे गाडु मजञ्नकुडैन दशरयुंडुयु जनुदेंचु चुन्न वाडनि तोचु चुन्नदनिन'** अर्थात् लगता है भरत अकेला नहीं है, उसके साथ हमारे पिता दशरथ भी आ रहे हैं। जवाबमें राम लक्ष्मणसे कहते हैं शायद हम लोगोंको समझानेके लिये हमें वापस ले जानेके लिये, अपनी बहूको साथ ले जानेके लिये वे आ रहे होंगे। तुलसीके लक्ष्मणमें भी भरतागमनके उद्देश्यको लेकर कुछ शंकाएँ पैदा होती हैं। पर वहाँ दशरथका नाम नहीं लिया जाता। पादुकाओंको राजचिह्नके रूपमें अयोध्या ले जानेका निर्णय बड़े-बुजुर्गोंके सम्मुख हो। इसलिये तुलसी जनकको पत्नीसमेत पधारनेका न्योता देते हैं। वनमें कौसल्या और जनकपत्नी सुनयना एक-दूसरेसे मिलकर बातें कर लेती हैं। निःसन्देह कहा जा सकता है कि तुलसीके रामायण-पात्र वेंकय्याके पात्रोंसे अधिक उन्नत एवं उदात्त हैं।

अरण्यकाण्डका आरम्भ तुलसी जयन्तकी कथासे करते हैं। गोपीनाथ रामायणमें वेंकय्या विराधकी कथाकी विस्तारके साथ चर्चा करते हैं। वेंकय्याके अनुसार विराध सीताका अपहरण करता है। इस सन्दर्भमें वेंकय्याका राम कैकेईकी निन्दा करता है। तुलसीके रामके मनमें परनिन्दाका ख्यालतक नहीं आता। वेंकय्याकी सीता अरण्यकाण्डमें, दण्डकारण्यमें प्रवेश करनेके पहले रामसे जीव-हिंसा न करने और अहिंसामार्गको अपनानेके लिये अनुरोध करती है। तुलसीरामायणमें इसकी चर्चा नहीं है।

शूर्पणखा-वृत्तान्त, खर-दूषण-त्रिशिरा-वध-प्रसंग, महाकपाल-स्थूलाक्ष-प्रसंग इत्यादिका वेंकय्या विस्तारके साथ वर्णन करते हैं। वाल्मीकिकी भाँति वेंकय्याका लक्ष्य भी रामको एक युद्धवीरके रूपमें प्रस्तुत करना लगता है, जबकि तुलसीका उद्देश्य रामको सिर्फ युद्धवीर नहीं, बल्कि सकलगुणाभिरामके साथ-साथ मर्यादापुरुषोत्तमके रूपमें चित्रित करना था।

मारीचके मुँहसे 'हा सीता! हा लक्ष्मण!' सुनकर सीताके मनमें अनेक शंकाएँ उत्पन्न होती हैं। तुलसीने इस सन्दर्भमें मात्र इतना लिखा है—***'मरम बचन जब सीता बोला'*** (अरण्यकाण्ड) मरम वचन अर्थजनित प्रयोग है। वेंकय्याकी सीता युयुत्सुगुणसम्पन्न होनेके कारण लक्ष्मणको जली-कटी सुनाती हैं। देखिये—**'भ्रात केटुलैन नपायम्बु गल्गं जेसि तदधनतर राज्यमुन्धनमुन, गैकोनि नन्नुं परिग्रहिम्बंगा मनमुन निश्चइंचितिवि मान विहीन।'** (गो०रा० अरण्यकाण्ड) अर्थात् अपने भाईको किसी-न-किसी ढंगसे विपत्तिमें फँसाकर राज्य, धन, धर्मके साथ, हे मानविहीन! तुम मुझे भी पाना चाहते हो। मरम वचनोंको सुनकर लक्ष्मण बड़े भ्राताकी खोजमें निकलते हैं।

प्रभावशाली एवं भावगर्भित प्रयोगोंके लिये तुलसी प्रसिद्ध हैं। सीताहरणके लिये रावण दण्डकारण्यमें प्रवेश करता है। इस प्रवेशका वर्णन तुलसी इस प्रकार करते हैं। ***'सो दससीस स्वान की नाईं। इत उत चितइ चला भड़िहाईं॥'*** 'भड़िहाईं' शब्दका प्रयोग रावणके चरित्रको साफ प्रकट करता है। इस प्रसंगका वर्णन वेंकय्याने इस प्रकार किया है—**'शशिहीन मैन रोहिणि डायु दारुण ग्रहंबु पोलिकन् जित्रानक्षत्रबुनूसे आक्रमिंचु शनैश्वरूनि चन्द्र सूर्यविहीन दैन सांध्य नावारिं महातमम्बु कैवार्ड'** अर्थात् शशिहीन रोहिणीके समीप आनेवाले दारुण ग्रहकी भाँति चन्द्रसूर्यविहीन सन्ध्यापर टूट पड़नेवाले घोरान्धकारके समान उस देविके पास

रावण आया।

गोस्वामीजी अरण्यकाण्डमें शबरी-प्रसंगका वर्णन करते हैं। राम शबरीद्वारा दिये गये फलोंको चावसे खाते हैं। वेंकय्याने इसके बारेमें कुछ नहीं लिखा है। ***'जाति पाँति कुल धर्म बड़ाई। धन बल परिजन गुन चतुराई॥'*** वाक्यके द्वारा तुलसी जाति-पाँतिका खण्डन करते हैं। वेंकय्या भी खण्डन कर सकते थे। पर उन्होंने नहीं किया है। तुलसीके अनुसार सुग्रीवसे मैत्री बढ़ानेका सुझाव शबरी देती है। लेकिन वेंकय्याके अनुसार कबन्ध अपने वधके बाद दिव्य रूप धारणकर यह सुझाव देता है।

किष्किन्धाकाण्डके एक दृश्यके वर्णनमें वेंकय्याने तुलसीको मात किया है। हनुमान् राम-लक्ष्मणको वानरराज सुग्रीवके पास ले जाते हैं। तब सुग्रीव उन आभरणोंको लाकर रामको दिखाते हैं, जिन्हें सीताने रामका नाम लेकर आकाशसे जमीनपर फेंका था। राम लक्ष्मणसे कहते हैं—लक्ष्मण! इनको पहचानो। लक्ष्मण जवाबमें कहते हैं—***'अधिई कमनाय रत्नांगदमुलुजी रुचित कुण्डलम्बुल नवबरतमु पादाभिवन्दनमुवलननने नेरूंग पद कटक नूपरमु महात्मा'***। अर्थात् हे राजन्! इस कड़े या कुण्डलको मैं नहीं जानता। हाँ, जिन पादकमलोंको मैं रोज अभिवादन करता था, उनके नूपुरोंको ही मैं पहचान सकता हूँ। लक्ष्मणके चरित्रके इस उभारको हम तुलसीके लक्ष्मणमें नहीं पाते।

तुलसी जिन पात्रोंको नगण्य समझते हैं, उनका नाम नहीं लिखते हैं। वानरोंको एक तपस्विनी समुद्र-तटतक पहुँचाती है। उसका नाम वेंकय्याके अनुसार स्वयंप्रभा है। तुलसी जानते थे कि किस पात्रपर ज्यादा जोर देना है और किसपर कम। पर वेंकय्या विस्तारप्रिय होनेके कारण सबके नाम लेते हैं।

सुन्दरकाण्डमें हनुमान्‌जी लंका पहुँचकर सीताको ढूँढ़ने लगते हैं। तुलसीके हनुमान् निष्ठावान् परम भक्त एवं ब्रह्मचारी होनेके कारण अन्तःपुरकी स्त्रियोंकी ओर देखते नहीं हैं। वे जानते थे सीता मैया वहाँ नहीं रहेंगी। उनके उक्त आत्मविश्वासका एक कारण सम्पातीके ये वचन हैं—***'तहँ असोक उपबन जहँ रहई। सीता बैठि सोच रत अहई॥'*** इसलिये वे विभीषणसे मिल सीधा अशोक वन पहुँचते हैं। वहीं वेंकय्याका सम्पाती कहता है। **'अंदु दश ननायन्तःपुर मन्दु निशाचरी निरुहद ये जानकि...'** (गो०रा० किष्किन्धाकाण्ड) अर्थात् दशाननके अन्तःपुरमें और राक्षसियाँ उनका पहरा दे रही हैं। यही कारण है कि वेंकय्याके हनुमान् अन्तःपुरमें काम-क्रीडाके बाद थककर सोयी हुई स्त्रियोंमें सीताको ढूँढ़ते हैं।

युद्धमें लक्ष्मण और राम इन्द्रजीतद्वारा नागपाशसे बँध गये। हम सब जानते हैं कि लक्ष्मणको मूर्च्छित करनेवाला इन्द्रजीत था और लक्ष्मणको मूर्छासे जगानेके लिये औषधियोंके पर्वतको हनुमान् लाते हैं। वेंकय्या शास्त्रीके अनुसार लक्ष्मण दो बार मूर्च्छित होते हैं और दोनों बार हनुमान् औषधियोंके पहाड़को उठाकर लाते हैं और दोनों बार उसे यथास्थानपर रख देते हैं। जबकि तुलसीके मानसके अनुसार गरुड़जीने राम-लक्ष्मणको नागपाशसे मुक्त किया था।

वेंकय्याके राम विभीषणको शरण देनेके बारेमें सबसे सलाह-मशविरा करते हैं। सुग्रीव, जाम्बवान्, अंगद आदि विभीषणको शरण देनेके पक्षमें नहीं थे। केवल हनुमान् शरण देनेके पक्षमें थे। सबकी राय लेकर राम खुद एक निर्णयपर पहुँचते हैं और सुग्रीवसे कहते हैं—

कोटि बिप्र बध लागहिं जाहू। आएँ सरन तजउँ नहिं ताहू॥
सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं। जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं॥

(रा०च०मा० ५।४४।१-२)

तुलसी कहते हैं—***'रामकथा कै मिति जग नाहीं।'*** (रा०च०मा) इसलिये तरह-तरहसे रामका चरित्र-चित्रण अपने-अपने कालानुरूप कवियोंने किया है। यही कारण है कि इस संसारमें ***'रामायन सत कोटि अपारा'*** है। इन शतकोटि रामायणोंमें जो ख्याति वाल्मीकि, कंबन और तुलसीको मिली है, वह अन्य रामायणकारोंको नहीं मिली है। फिर भी वेंकय्या शास्त्रीको आन्ध्रका तुलसी कहनेमें कोई अत्युक्ति नहीं होगी। तुलसी और वेंकय्या दोनों ही भारतीय साहित्यके दो मणिदीप हैं, जिनका प्रकाश भारतीय संस्कृतिको आलोकित कर रहा है।

१०८ राम-नाम-माला

॥ दोहा ॥

श्री गणपति के चरण को बन्दौ बारम्बार।
अष्टसिद्धि नवनिद्धि नित, अभिमत फल दातार॥

॥ राम-नाम-माला ॥

राम नाम कहबो करो, धरे रहो मन धीर।
कारज सदा सुधारिहैं, कृपा सिंधु रघुबीर॥

॥ चौपाई ॥

राम नाम आधी रती, पापन कोट पहार।
बलिहारी वह नाम की, पाप होत सब छार॥

राम नाम सुमिरा नहीं, किया न हरि से हेत।
वह नर ऐसेइ जायँगे, ज्यों मूली का खेत॥
राम नाम के कारणे, सब धन डारे खोय।
मूरख जाने गिर गयो, दिन दिन दुगना होय॥
राम नाम की लूट है, लूट सकै सो लूट।
अन्त समय पछतायगा, प्राण जायँगे छूट॥
राम नाम कहते रहो, सदा राम के काम।
बिना भजन श्रीराम के, कंचन देह निकाम॥
राम झरोखे बैठि के, सबका मुजरा लेय।
जैसी जाकी चाकरी, तैसी ताको देय॥
राम नाम की मूरती, मो मन रही समाय।
ज्यों मेंहदी के पत्र में, लाली लखी न जाय॥
राम नाम रटना रटो, जबै भक्त प्रहलाद।
श्रीगोपाल दर्शन दियो, कियो भक्त के काज॥
राम नाम है रत्न धन, सब रत्नन को खान।
परखन वाला जौहरी, जो है चतुर सुजान॥
राम नाम की कोठरी, चन्दन लगे किंवार।
ताला लागे प्रेम के, खोलें कृष्ण मुरार॥
राम नाम की डोर में, बँधे रहो दिन रैन।
कृपा करें श्रीरामजी, सदा करोगे चैन॥
राम नाम की प्रीति ही, जो कह चतुर सुजान।
भवसागर से पार हो, पावे पद निर्वान॥
राम नाम मनिदीप धरु, जीह देहरीं द्वार।
तुलसी भीतर बाहेरहुँ, जो चाहसि उजिआर॥
राम नाम के लेत ही, अजामिल महाराज।
चढ़ विमान सुरपुर गयो, महिमा रही विराज॥
राम नाम मीरा लियो, सुनों सबै चितलाय।
जहर पिलाया पी गई, हरि को भोग लगाय॥
राम नाम के लेत ही, सकल पाप कट जाय।
जैसे रवि के उदय से, अंधकार मिट जाय॥
राम नाम के आसरो, है कलियुग के माहिं।
भवसागर के तरन को, यतन दूसरो नाहिं॥
चलते-फिरते में सदा, कभी न भूलो राम।
राम नाम की भूल से दुःख है आठो याम॥
राम नाम दुःख में कहै, सुख में कहै न कोय।
जो सुख में सुमिरन करै, तो दुःख काहे को होय॥
राम नाम के लेत ही, पवन पुत्र हनुमान।
सिन्धु लाँघ लंका गयो, कृपा करी भगवान॥
राम नाम ध्रुव ने लियो, मिलो अटल पद राज।
सुर, नर, मुनि जै जै करें, महिमा रही विराज॥
राम नाम सब भवन में, लिखा विभीषण आप।
लंका का राजा कियो, हरो सकल संताप॥
राम नाम जो रटत नित, वचन कहत हैं दीन।
कृपा वही श्री राम की, होत वचन में लीन॥
राम नाम को रटत नित, तुकाराम महाराज।
सो सदेह बैकुण्ठ में, जाकर रह्यो विराज॥
राम नाम श्री अमर पद, पावै चतुर सुजान।
बिना भजन श्रीराम के, मन में रहत मलान॥
राम नाम को सुमिर के, कथा कबीरा ज्ञान।
रामचरण लवलीन हो, पाया पद निर्वान॥
राम नाम इक सार है, सब ग्रंथन को सार।
ताको नित सुमिरन करो, उतर जाव भवपार॥
राम नाम महिमा सुनो, सज्जन जन चितलाय।
राम नाम के लेत ही, कोटिन पाप बिलाय॥
राम नाम इक मंत्र है, ताको राखो पास।
सब तीरथ या मंत्र से, तुमको हो सुपास॥
राम नाम सम नाम नहिं, तीरथ बड़ा प्रयाग।
गंगा, यमुना, सरस्वती, जो पावे बड़ भाग॥
राम नाम को सुमिर के, जो कुछ कीजै काज।
सदा सुमंगल होत हैं, कृपा करें रघुराज॥
राम नाम सुमिरिन कियो, श्री मोरध्वज राय।
ताको सुत जीवित किए, कृपा करी यदुराय॥
राम नाम सुग्रीव जप, अंगद राम संभार।
महिमा रघुवर नाम की, कविजन लहै ना पार॥
राम नाम ते होत है, चतुर बीस अवतार।
चार वर्ण आश्रम सहित, राम नाम आधार॥
राम नाम स्वांसा जपै, छै सौ इकईस बार।
अलख लखै सब ठौर में, उपजा जाप विचार॥
राम नाम सब जगत को, पालन पोषणहार।
घट-घट में बासा करे, सबमें राम निहार॥
राम नाम सुर रटत नित, राम नाम जप ईश।

राम नाम पावन किये, सकल भालु-कपि कीश॥
राम नाम सब सिद्धि मत, साधे सिंधु समान।
राम नाम जे जपहिं नित, पावहिं पद निर्वान॥
राम नाम जाने बिना, भ्रमत फिरे जग सोय।
जीव चराचर विविध-विधि, राम नाम ते होय॥
राम नाम माथौ ऋषि, राम नाम त्रिपुरार।
राम नाम रावण बधौ, तिलक विभीषण सार॥
राम नाम है कृष्ण ही, राम नाम बलराम।
राम नाम नरसिंह है, राम नाम सब धाम॥
राम नाम बैकुंठ है, गऊ लोक दिवपास।
राम नाम जप अमरपति, राम नाम कैलास॥
राम नाम ध्यावे कवी, राम नाम रट शेष।
राम नाम मुनि उर धरें, शंकर गौरि गणेश॥
राम नाम गोदावरी, सरयू निरमल नीर।
गंगा, यमुना, गोमती, राम नाम है क्षीर॥
राम नाम सब स्वास है, रोम-रोम में राम।
राम नाम को छोड़ के, नहीं किसी से काम॥
राम नाम मीरा जप्यो, राम नाम रैदास।
नाग देव जप नाम को, किया अमरपुर बास॥
राम नाम भज कपट तज, गुरु को वचन विचार।
यही आत्मा राम है, देवन कही पुकार॥
राम-राम सब अवध को, जीवन प्राण आधार।
राम नाम के बिना नर, भ्रमत फिरे संसार॥
राम नाम के दस भये, हैं अवतार अनेक।
राम नाम कह तर गई, गणिका विमल विवेक॥
राम नाम सब जगत में, व्याप रहा श्रीराम।
राम नाम आधार है, राम नाम से काम॥
राम नाम से होत हैं, तीरथ चारों धाम।
राम नाम से होत हैं, साधु संत तज काम॥
राम नाम सुखसार है, राम नाम धन धाम।
आदि, मध्य, अरु अंत में, राम-राम तन राम॥
राम नाम भाखा नहीं, कर से दियो न दान।
मान किया नहीं विप्र का, सो नर पशु समान॥
राम नाम पतवार है, काटे मृत्यु अकाल।
आदर कियो न संत का, उनका कौन हवाल॥
राम नाम के मंत्र को, सदा जपे त्रिपुरारि।
राम नाम प्रहलाद जप, बस में कियो मुरारि॥
राम नाम हनुमान ने, सुमिरों आठो याम।
किष्किंधा के पास में, तुरतहिं मिलि गए राम॥
राम नाम ध्रुव ने रटा, राम चरन चितलाय।
पलक खोल दर्शन दिये, रहो सुयश जग छाय॥
राम नाम को सुमिर के, शेष धरो-भू-भार।
राम नाम शारदा रटै, तहूँ न पावे पार॥
राम नाम को सुमिर के, गणिका गई निजधाम।
राम नाम महिमा अमित, रोम-रोम में राम॥
राम नाम जप चतुर नर, काशी करे निवास।
राम नाम की कृपा से, पावै सुरपुर बास॥
राम नाम सुमिरन किये, सब अज्ञान नशाय।
जैसे रवि के उदय से, अंधकार मिट जाय॥
राम नाम उल्टा जपा, बाल्मीक जगजान।
राम नाम की कृपा से, हो गये ब्रह्म समान॥
राम नाम महिमा कही, सब ग्रंथन को सार।
भूल चूक यदि होय जो, कविजन लेहिं सुधार॥

॥ कवित्त ॥

साँचो इक राम नाम, झूठा है जगत सब।
राम गुण पावन, पुनीत नित गाइये॥
आदि राम मध्य राम, अंतहु में राम नाम।
पढ़े नित राम-राम, लिख के दरसाइये॥
राम-नाम बिना कोई, वीरता न आवै चित्त।
पढ़ै सोई राम-नाम, बाँच के सुनाइये॥

॥ दोहा ॥

यह माला पूरण हुई, भई कृपा श्रीराम।
जो जन नित सुमिरन करे, सिद्ध होय सब काम॥

॥ इति १०८ राम-नाम माला ॥

[प्रेषक—योगाचार्य डॉ० श्रीओमप्रकाशजी 'आनन्द']

बंदउँ नाम राम रघुबर को। हेतु कृसानु भानु हिमकर को॥
बिधि हरि हरमय बेद प्रान सो। अगुन अनूपम गुन निधान सो॥
महामंत्र जोइ जपत महेसू। कासीं मुकुति हेतु उपदेसू॥
महिमा जासु जान गनराऊ। प्रथम पूजिअत नाम प्रभाऊ॥

मैं श्रीरघुनाथजीके नाम 'राम' की वन्दना करता हूँ, जो कृशानु (अग्नि), भानु (सूर्य) और हिमकर (चन्द्रमा)-का हेतु अर्थात् 'र' 'आ' और 'म' रूपसे बीज है। वह 'राम' नाम ब्रह्मा, विष्णु और शिवरूप है। वह वेदोंका प्राण है; निर्गुण, उपमारहित और गुणोंका भण्डार है। जो महामन्त्र है, जिसे महेश्वर शिवजी जपते हैं और उनके द्वारा जिसका उपदेश काशीमें मुक्तिका कारण है, तथा जिसकी महिमाको गणेशजी जानते हैं, जो इस 'राम' नामके प्रभावसे ही सबसे पहले पूजे जाते हैं। **[श्रीरामचरितमानस]**

सन्त-चरित—

सन्त श्रीनारायणपुरीजी महाराज

(श्रीपंकज जयप्रकाशजी शर्मा)

अपना भारत देश आध्यात्मिक दृष्टिसे संसारमें अग्रगण्य है। प्रवचन आदि धार्मिक कार्य यहाँ चलते ही रहते हैं, भगवान् और सन्तोंने अवतार लेनेके लिये इसी भूमिको स्वीकार किया है। जैसे उत्तराखण्ड देवभूमि है, उसी प्रकार महाराष्ट्र प्रदेश सन्तोंकी कर्मभूमि है। इस कर्मभूमिमें सन्त श्रीज्ञानेश्वर, सन्त श्रीतुकाराम, सन्त श्रीगजानन महाराज, सन्त श्रीसखाराम आदि अनेक सन्त अवतरित हुए हैं। उन सन्त-महात्माओंमें देउलगाँवके सन्त श्रीनारायणपुरीजी महाराजका भी नाम आता है। **'बुडता हे जन देखवे डोवा म्हणूनी कश्रवका येत्त असे'** अर्थात् अज्ञानी जन अन्धकारमें डूब रहे हैं, यह आँखोंसे देखा नहीं जाता, इसीलिये सन्त अवतार लेते हैं एवं उन्हें सन्मार्ग बताते हैं। ऐसा सन्त श्रीतुकाराम महाराजने अपने अभंगमें कहा है—

सन्त श्रीनारायणपुरीजी महाराज मराठवाड़ाके छोटेसे ढाकली (त० आंबद) गाँवमें बालरूपमें प्रकट हुए थे, वे कहाँसे आये, उनके माँ-बाप कौन हैं ? इसका पता लगानेके लिये गाँववालोंने कोशिश की, परंतु कोई भी बातका पता नहीं चला। वे बचपनसे ही श्रीरामभक्त थे। वे सदैव रामायण सद्ग्रन्थका पाठ किया करते, पढ़नेके लिये उन्हें किसी स्कूलमें जानेकी जरूरत नहीं पड़ी। इतनी छोटी उम्रमें उनकी रामभक्ति देखकर गाँववाले उनपर बेहद खुश थे। गाँव छोटा था, किंतु गाँवमें आस्तिक लोगोंका परिमाण शत-प्रतिशत था। महाराजने गाँववालोंकी सहायतासे सुन्दर श्रीराममन्दिरका निर्माण किया था। आगे चलकर उन्होंने वारिके श्रीहनुमान्जीका कठोर तप किया। तदनन्तर अपने काले रंगके घोड़ेपर सवार होकर अनेक तीर्थोंकी यात्रा करते हुए, वे यहाँ देउलगाँव साकरशा गाँवको आये। यह स्थान महाराष्ट्र प्रान्तके बुलडाणा जिलेमें स्थित है। यहाँ श्रीदुर्गामाताका जागरूक देवस्थान है। मन्दिरके आगेसे जानेवाली उत्तरवाहिनी उत्ताबत्ती नामक नदी है। आस-पासके हरे-भरे खेत, कई पुराने पेड़, हरी-भरी झाड़ी इस प्रकार निसर्गरम्य स्थान देखकर महाराजने यहाँ रहना स्वीकार किया। माँ दुर्गाकी उन्होंने तन, मनसे पूजा-अर्चना की, इसीलिये माँ दुर्गा उनपर प्रसन्न तो थी हीं, उन्हें कई बार दर्शन भी देती थीं। कहते हैं कि हिन्दवी स्वराज्यके संस्थापक छत्रपति श्रीशिवाजी महाराज अपने भाई शम्भाजी राजेके साथ घोड़ेपर सवार होकर यहाँ माताके दर्शनको आये थे। माँ तुलजा भवानीने उनको तलवार दी थी, जो उन्हें सदैव यश दिलाया करती थी।

गाँवमें रहकर महाराजने अनेक नास्तिक लोगोंको ईश्वरभक्तिका मार्ग दिखाया। कई लोगोंको व्यसनमुक्तकर उन्हें सन्मार्ग दिखाया। तृष्णा निवारनेके लिये गाँवके लोगोंकी सहायतासे बहुत बड़ा कुआँ खुदवाया। लोगोंको उनके कई चमत्कार दिखायी दिये, इसीलिये गाँवके आस-पासके कई लोग उनके भक्त बन गये थे। एक बार गाँवमें प्लेगकी बीमारी आनेसे गाँवके लोग घर छोड़कर जंगलमें रहनेको चले गये थे। बार-बार रोग आनेसे गाँववाले लोग हैरान हो गये थे। 'महाराज! हमारे लिये कुछ भी करो और इस महामारीसे हमें बचाओ।' ऐसी गाँववालोंने महाराजसे प्रार्थना की, तब महाराजने माँ भगवतीका शतचण्डी यज्ञ करनेकी सोची। यज्ञकी तैयारी हुई। दूर-दूरसे विद्वान् ब्राह्मणोंको बुलाया गया था, धूमधामसे यज्ञकी तैयारी हुई और यज्ञ शुरू हो गया था।

किंतु यज्ञमें घीकी कमी होनेकी सम्भावना आने लगी, इसीलिये भक्त चिन्तित हो गये थे। उस वक्त आज-जैसी गाँवमें वाहनकी व्यवस्था नहीं थी, गाँवका सब घी भक्त पहले ही एकत्रित कर चुके थे। इस घटनासे नास्तिक लोगोंने सन्त-निन्दा करना शुरू किया। भावुक भक्त अप्रसन्न हो गये थे। यह बात जब महाराजको ज्ञात हुई, तब महाराजने माँके मन्दिरमें जाकर प्रार्थना की, 'माँ दुर्गा! अब तू ही मेरी इज्जत रख, यज्ञ निर्विघ्न पूरा करना अब तेरे ही हाथ में है, यज्ञमें घीकी कमी आ रही है, निन्दक मेरी निन्दा कर रहे हैं।' तब माताने गुप्तरूपसे महाराजको कहा कि—मेरे पीछे नदीमेंसे चार गागर पानी भरकर भक्तोंके हाथसे रख दो। महाराजके कहनेपर भक्तोंने वैसा ही किया और हरिनाम-संकीर्तन शुरू हो गया। थोड़ी

देरसे जाकर देखा तो इस पानीका घीमें रूपान्तर हो गया, यह चमत्कार देखकर भावुक भक्त नतमस्तक हो गये तो निन्दकोंने भी अपनी गर्दन नीचे झुकायी।

महाराजका घोड़ा भी ईश्वरभक्त ही था, वह एकादशी व्रत तो करता ही था तथा प्रतिदिन हरिभजन (भगवान्‌के अभंग) गाकर महिलाओंके द्वारा पीसे हुए धान, चनेकी दाल आदि ही खाता था। महाराजने समाजको सही दिशा दिखायी तथा भक्तोंको मोक्षका मार्ग दिखाया।

एक दिन शरद्‌पूर्णिमाकी चाँदनी रातमें महाराज भक्तोंके साथ माताके मन्दिरके आगे बैठे थे। भक्त दूधकी खीर (रबड़ी) बना रहे थे। आध्यात्मिक स्वरूपकी बातें चल रही थी। बातों-बातोंमें महाराजने भक्तोंको माघ महा पंचमीके दिन समाधि लेनेकी इच्छा बतायी तो सभी भक्त उदास और चुप हो गये। इसपर महाराजने कहा—'अरे! ऐसे व्यर्थ दुखी मत होइये, जन्म लेनेवालेकी मृत्यु अवश्य होती है। कुरुक्षेत्रमें भगवान् श्रीकृष्णने गीतामें अर्जुनको कहा है—**'नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।'** अर्थात् आत्मा अमर है, आत्माको कोई भी शस्त्र काट नहीं सकता, अग्नि जला नहीं सकती। जैसे हम पुराने-फटे वस्त्र त्यागकर नये वस्त्र धारण करते हैं, उसी प्रकार आत्मा पुराना देह त्यागकर नया देह धारण करती है। इसीलिये इस नश्वर शरीरके लिये शोक मत करो, मुझे हर्षके साथ समाधिस्थ करो, प्रपंचकर परमार्थ करो, तुम्हारे शत्रु तुम्हारे शरीरमें छिपे हुए हैं, उन्हें शरीरसे दूर भगाओ, मुझे कदापि भूलें नहीं, तुम्हारे लिये मैं यहाँपर ही हूँ।

दूसरे दिन ब्रह्ममुहूर्तमें ही महाराजने अपनी समाधिके लिये स्थलकी जगह निश्चित कर ली थी। महाराजने भक्तोंद्वारा अपने समाधि-स्थलका काम वायुवेगसे पूरा कराया। महाराजका मन्दिर भक्तोंके लिये श्रद्धा-स्थानके साथ-साथ विश्राम-स्थान भी बन गया था। आखिर शालिवाहन शक माघ मासकी पंचमी तिथिको अभिजित् मुहूर्तमें ई०स० १८८८में महाराज 'हर हर' कहते हुए समाधिस्थ हुए। चारों ओर सब दूर-दूरतक खबर पहुँच गयी। लोग शोकाकुल हो गये, जिस सूरजने उष्णता और प्रखर तेज दिया था। उस सूरजका अस्त हो गया था। सभी भक्त अन्धकारमें डूब गये थे। अभी भी महाराज किसी-न-किसी रूपमें भक्तोंको दर्शन देकर उनकी इच्छाओंको पूरा करते हैं।

ई०स० २००१ के भादो महीनेमें नदीमें भयंकर बाढ़ आयी थी। बाढ़के पानीने गाँवको चारों तरफसे घेर लिया था। बाढ़के पानीके साथ गाँवमें बड़े और विषैले साँप भी आ रहे थे। माताके पुजारी मन्दिरके कलशके पास ऊपरी भागमें जाकर बैठे थे। गाँवमें हाहाकार मच गया था। रातका समय था, इतनेमें बाढ़का पानी माता और महाराजके मन्दिरमें भी घुस गया था। माता और महाराजके समाधि-स्थलको बाढ़के पानीका स्पर्श होते ही नदीका विराट् रूप शान्त हो गया था। कोरोना-जैसी महामारीसे भी गाँव बचा रहा। यह है सन्त श्रीनारायणपुरीजी महाराजकी महिमा!

भाग्योदयेन बहुजन्मसमर्जितेन सत्सङ्गमं च लभते पुरुषो यदा वै।
अज्ञानहेतुकृतमोहमदान्धकारनाशं विधाय हि तदोदयते विवेकः॥
जाड्यं धियो हरति सिञ्चति वाचि सत्यं
मानोन्नतिं दिशति पापमपाकरोति।
चेतः प्रसादयति दिक्षु तनोति कीर्तिं
सत्सङ्गतिः कथय किं न करोति पुंसाम्॥

बहुत जन्मके पुण्य-पुंजसे भाग्योदय होनेपर जब पुरुषको सत्संगकी ही प्राप्ति होती है, तभी अज्ञानकृत मोह और मदरूपी अन्धकारका नाश करके विवेकका उदय होता है।

कहिये, सत्संगति पुरुषोंका क्या उपकार नहीं करती? वह बुद्धिकी जड़ताको हरती है, वाणीमें सत्यका संचार करती है, सम्मान बढ़ाती है, पापको दूर करती है, चित्तको आनन्दित करती है और समस्त दिशाओंमें कीर्तिका विस्तार करती है।

सुभाषित-त्रिवेणी

क्या खायें, क्या न खायें

[What to eat and what not to eat]

यच्छक्यं ग्रसितुं ग्रस्यं ग्रस्तं परिणमेच्च यत्।
हितं च परिणामे यत् तदद्यं भूतिमिच्छता॥

अपनी उन्नति चाहनेवाले पुरुषको वही वस्तु खानी (या ग्रहण करनी) चाहिये, जो खानेयोग्य हो तथा खायी जा सके, खाने (या ग्रहण करने)-पर पच सके और पच जानेपर हितकारी हो।

Anyone who desires to make a headway ought to adopt means that will ensure his success. A man should eat what is edible, what can be digested and what will nourish his body.

वनस्पतेरपक्वानि फलानि प्रचिनोति यः।
स नाप्नोति रसं तेभ्यो बीजं चास्य विनश्यति॥

जो पेड़से कच्चे फलोंको तोड़ता है, वह उन फलोंसे रस तो पाता नहीं; उलटे उस वृक्षके बीजका नाश होता है।

Anyone who plucks an unripe fruit does not enjoy its taste. Simultaneously, however, he destroys the seed as well.

यस्तु पक्वमुपादत्ते काले परिणतं फलम्।
फलाद् रसं स लभते बीजाच्चैव फलं पुनः॥

परंतु जो समयपर पके हुए फलको ग्रहण करता है, वह फलसे रस पाता है और उस बीजसे पुनः फल प्राप्त करता है।

He who waits for the fruit to ripen prior to plucking it, enjoys its juice. With the seed, he grows more of the same fruit.

आढ्यानां मांसपरमं मध्यानां गोरसोत्तरम्।
तैलोत्तरं दरिद्राणां भोजनं भरतर्षभ॥

भरतश्रेष्ठ! धनोन्मत्त पुरुषोंके भोजनमें मांसकी, मध्यम श्रेणीवालोंके भोजनमें गोरसकी तथा दरिद्रोंके भोजनमें तेलकी प्रधानता होती है।

O superior among the Bharatas! The arrogant wealthy take more of meat in their meals while the middle class is happy with milk and milk products. The poor, however, use more of oil than other ingredients while cooking food.

सम्पन्नतरमेवान्नं दरिद्रा भुञ्जते सदा।
क्षुत् स्वादुतां जनयति सा चाढ्येषु सुदुर्लभा॥

दरिद्र पुरुष सदा स्वादिष्ट ही भोजन करते हैं, क्योंकि भूख उनके भोजनमें स्वाद उत्पन्न कर देती है और वह (भूख) धनियोंके लिये सर्वथा दुर्लभ है।

The paupers always relish their meal because being hungry they enjoy whatever is available. This sort of pleasure is not available to the rich.

प्रायेण श्रीमतां लोके भोक्तुं शक्तिर्न विद्यते।
जीर्यन्त्यपि हि काष्ठानि दरिद्राणां महीपते॥

राजन्! संसारमें धनियोंको प्रायः भोजन करनेकी शक्ति नहीं होती, किंतु दरिद्रोंके पेटमें काठ भी पच जाते हैं।

Rajan! The rich in this world cannot even digest a proper meal [because the tension in their life upsets their digestion.] A poor man can digest even wood pieces.

नीवारमूलेङ्गुदशाकवृत्तिः
सुसंयतात्माग्निकार्येषु चोद्यः।
वने वसन्नतिथिष्वप्रमत्तो
धुरन्धरः पुण्यकृदेष तापसः॥

जो नीवार (जंगली चावल), कन्द-मूल, इंगुद (लिसौड़ा) और साग खाकर निर्वाह करता है, मनको वशमें रखता है, अग्निहोत्र करता है, वनमें रहकर भी अतिथिसेवामें सदा सावधान रहता है, वही पुण्यात्मा तपस्वी श्रेष्ठ माना गया है।

The attributes of the highest Vanaprastha are as follows :

1. He survives on brown rice, roots, vegetables and the Inguda nuts. 2. He is in control of his wandering mind. 3. He performs Agnihotra regularly. 4. Even while residing in a forest he is particular in looking after his guests.

[विदुरनीति २।१४—१६, ४९—५१, ६।७]

व्रतोत्सव-पर्व

सं० २०८१, शक १९४६, सन् २०२४, सूर्य-उत्तरायण, ग्रीष्म-ऋतु, आषाढ़ कृष्णपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा प्रातः ५।३२ बजेतक	रवि	पू०षा० सायं ६।१५ बजेतक	२३ जून	**मकरराशि** रात्रिमें १२।५ बजेसे।
तृतीया रात्रिमें २।४१ बजेतक	सोम	उ० षा० ,, ५।३३ बजेतक	२४ ,,	**भद्रा** दिनमें ३।३० बजेसे रात्रिमें २।४१ बजेतक।
चतुर्थी ,, १२।४५ बजेतक	मंगल	श्रवण दिनमें ४।३१ बजेतक	२५ ,,	**कुम्भराशि** रात्रिशेष ३।५२ बजेसे, **पंचकारम्भ** रात्रिशेष ३।५२ बजे, **संकष्टी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रोदय** रात्रिमें ९।५८ बजे।
पंचमी ,, १०।३२ बजेतक	बुध	धनिष्ठा ,, ३।१३ बजेतक	२६ ,,	× × × ×
षष्ठी ,, ८।१० बजेतक	गुरु	शतभिशा ,, १।४२ बजेतक	२७ ,,	**भद्रा** रात्रिमें ८।१० बजेसे।
सप्तमी सायं ५।४२ बजेतक	शुक्र	पू० भा० ,, १२।४ बजेतक	२८ ,,	**भद्रा** प्रातः ६।५६ बजेतक, **मीनराशि** प्रातः ६।२९ बजेसे।
अष्टमी दिनमें ३।१३ बजेतक	शनि	उ० भा० ,, १०।२३ बजेतक	२९ ,,	**मूल** दिनमें १०।२३ बजेसे।
नवमी ,, १२।४७ बजेतक	रवि	रेवती ,, ८।४६ बजेतक	३० ,,	**भद्रा** रात्रिमें ११।३९ बजेसे, **मेषराशि** दिनमें ८।४६ बजेसे, **पंचक समाप्त** दिनमें ८।४६ बजे।
दशमी ,, १०।३० बजेतक	सोम	अश्वनी प्रातः ७।१७ बजेतक	१ जुलाई	**भद्रा** दिनमें १०।३० बजेतक, **मूल** प्रातः ७।१७ बजेतक।
एकादशी ,, ८।२७ बजेतक	मंगल	भरणी ,, ६।० बजेतक	२ ,,	**वृषराशि** दिनमें ११।४५ बजेसे, **योगिनी एकादशीव्रत (सबका)।**
द्वादशी प्रातः ६।४१ बजेतक	बुध	रोहिणी रात्रिशेष ४।२० बजेतक	३ ,,	**प्रदोषव्रत।**
त्रयोदशी ,, ५।१६ बजेतक	गुरु	मृगशिरा ,, ४।५ बजेतक	४ ,,	**भद्रा** प्रातः ५।१६ बजेसे दिनमें ४।१३ बजेतक, **मिथुनराशि** दिनमें ४।१३ बजेसे।
अमावस्या रात्रिमें ३।४५ बजेतक	शुक्र	आर्द्रा ,, ४।१९ बजेतक	५ ,,	**अमावस्या।**

सं० २०८१ शक १९४६, सन् २०२४, सूर्य उत्तरायण-दक्षिणायन, ग्रीष्म-वर्षा-ऋतु, आषाढ़ शुक्लपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा रात्रिमें ३।४४ बजेतक	शनि	पुनर्वसु रात्रिशेष ५।२ बजेतक	६ जुलाई	**कर्कराशि** रात्रिमें १०।५१ बजेसे, **पुनर्वसुका सूर्य** दिनमें ९।३४ बजे।
द्वितीया रात्रिशेष ४।१५ बजेतक	रवि	पुष्य अहोरात्र	७ ,,	**श्रीजगदीश रथयात्रा।**
तृतीया ,, ५।१३ बजेतक	सोम	पुष्य प्रातः ६।१७ बजेतक	८ ,,	**मूल** प्रातः ६।१७ बजेसे।
चतुर्थी अहोरात्र	मंगल	आश्लेषा दिनमें ७।५७ बजेतक	९ ,,	**भद्रा** प्रातः ५।१७ बजेसे, **सिंहराशि** दिनमें ७।५७ बजेसे, **वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत।**
चतुर्थी प्रातः ६।३९ बजेतक	बुध	मघा ,, १०।४ बजेतक	१० ,,	**भद्रा** प्रातः ६।३९ बजेतक।
पंचमी दिनमें ८।२६ बजेतक	गुरु	पू०फा० ,, १२।२९ बजेतक	११ ,,	**कन्याराशि** रात्रिमें ७।८ बजेसे।
षष्ठी ,, १०।२४ बजेतक	शुक्र	उ०फा० ,, ३।५ बजेतक	१२ ,,	× × × ×
सप्तमी ,, १२।२५ बजेतक	शनि	हस्त सायं ५।४२ बजेतक	१३ ,,	**भद्रा** दिनमें १२।२५ बजेसे रात्रिमें १।२१ बजेतक।
अष्टमी ,, २।१९ बजेतक	रवि	चित्रा रात्रिमें ८।९ बजेतक	१४ ,,	**तुलाराशि** प्रातः ६।५६ बजेसे।
नवमी ,, ३।५६ बजेतक	सोम	स्वाती ,, १०।१९ बजेतक	१५ ,,	× × × ×
दशमी सायं ५।९ बजेतक	मंगल	विशाखा ,, १२।३ बजेतक	१६ ,,	**वृश्चिकराशि** सायं ५।३७ बजेसे, **कर्कसंक्रान्ति** रात्रिमें १०।४३ बजे।
एकादशी ,, ५।५६ बजेतक	बुध	अनुराधा ,, १।२२ बजेतक	१७ ,,	**भद्रा** प्रातः ५।३३ बजेसे सायं ५।५६ बजेतक, **श्रीहरिशयनी एकादशीव्रत (सबका), दक्षिणायन एवं वर्षाऋतु प्रारम्भ, मूल** रात्रिमें १।२२ बजेसे।
द्वादशी ,, ६।११ बजेतक	गुरु	ज्येष्ठा ,, २।९ बजेतक	१८ ,,	**धनुराशि** रात्रिमें २।९ बजेसे, **प्रदोषव्रत।**
त्रयोदशी ,, ५।५४ बजेतक	शुक्र	मूल ,, २।२६ बजेतक	१९ ,,	**मूल** रात्रिमें २।२६ बजेतक।
चतुर्दशी ,, ५।९ बजेतक	शनि	पू०षा० ,, २।१५ बजेतक	२० ,,	**भद्रा** सायं ५।९ बजेसे रात्रिशेष ४।३३ बजेतक, **व्रतपूर्णिमा।**
पूर्णिमा ,, ३।५६ बजेतक	रवि	उ०षा० ,, १।३७ बजेतक	२१ ,,	**पूर्णिमा, गुरुपूर्णिमा, मकरराशि** दिनमें ८।५ बजेसे।

कृपानुभूति

[भगवत्कृपाकी कुछ घटनाएँ]

(१)

बालकके प्राण बच गये

२६ जनवरी सन् २०११ को शालामें अवकाश था। मेरा छोटा तथा बड़ा पौत्र घरपर उनकी ताईके साथ आगरमें रहते हैं। बड़ी बहू तीसरी मंजिलपर चने सूखने डाल रही थी। दोनों बालक सीढ़ीसे मंजिलपर चढ़ गये। दोनों भाई भँवरोंसे खेल रहे थे। भँवरा तीसरी मंजिलसे दूसरी मंजिलके बरामदेमें गिरने लगा, छोटा पौत्र प्रियांश उसको पकड़ने दौड़ा, भँवराके साथ पौत्र भी गिर गया। प्रियांश गिरते ही बेहोश हो गया, मुँह, कान एवं आँखसे खून आने लगा।

पड़ोसमें शाला व्यवस्थापक कार्यक्रमका समापनकर वाहनसे घर आये थे। छोटी पौत्री वाहनकी आवाज सुनकर नीचे गयी, उनका हाथ पकड़कर बिना कुछ कहे ऊपर ले गयी। व्यवस्थापक कुछ समझ नहीं पा रहे थे। बालककी हालत देख घबरा गये, उठाकर वाहनसे चिकित्सालय ले गये, चिकित्सकने इंजेक्शन लगाया, कहा तुरंत उज्जैन ले जाओ। बालक कोमामें चला गया है। बहू, व्यवस्थापककी माताजी, दूसरे पड़ोसी शर्मा-परिवार वाहनसे उज्जैनके लिये रवाना हो गये। मैं परिवारसहित गाँवमें था। दूरभाषसे उज्जैन जानेकी सूचना मिली। दोनों पुत्र एवं दोनों बहुएँ मोटरसाइकिलसे आगरको चल दिये। आगरसे उज्जैनके लिये यात्रीवाहनमें सवार हो गये। घटनाकी प्राप्त हो रही जानकारीके अनुसार पौत्रके बचनेकी उम्मीद कम थी।

मेरा परिवार वल्लभकुलका सेवक है तथा श्रीनाथजी हमारे आराध्य हैं। घरपर निजी हवेलीमें गत ८० वर्षसे विराज रहे हैं। सभी श्रीनाथजीसे बालककी रक्षा एवं ठीक होनेकी विनती कर रहे थे।

वाहनमें बालक उपचारहेतु उज्जैन जा रहा था, १२ किलोमीटर दूर उज्जैनसे रास्तेमें बालकने उसकी ताईको आवाज दी। बालकके बोलनेसे वाहनमें सभीको सुखद आश्चर्य हुआ। पाटीदार चिकित्सालयमें डॉक्टरके पास ले गये। उस दिन इन्दौरके जबड़ा-रोग-विशेषज्ञ वहाँ मौजूद थे, बालकके पूरे शरीर, सिर, आँख, हाथ-पाँवकी सोनोग्राफी करायी गयी। सोनोग्राफीमें बायें जबड़ेकी हड्डी टूट गयी थी। शेष पूरा शरीर सुरक्षित था। डॉक्टरने देखकर कहा—तीसरी मंजिलसे गिरनेके बावजूद सिर, हाथ, पाँव, पसलियाँ, रीढ़की हड्डी आदि सुरक्षित हैं, यह ईश्वरकी कृपा ही है। जबड़ेकी शल्य-क्रिया हो जायगी तथा मुँह जो टेढ़ा हो गया है, सामान्य हो जायगा।

२७ जनवरीको जबड़ेकी शल्य-क्रिया हुई। बालक बोलने लगा। सात दिन गहन चिकित्सामें रखनेके बाद अस्पतालसे छुट्टी दे दी गयी। जबड़ेके तार एक माह बाद निकालनेको कहा। एक माहतक बच्चेको तरल भोजन दिया गया। निर्धारित समयपर बच्चेको इन्दौरके डॉक्टरके पास तार निकालनेके लिये ले गये। तार निकाले, फिर सोनोग्राफी की गयी, जबड़ेकी हड्डी एवं दाँत जुड़ गये थे, बालकको सामान्य पतला नरम भोजन देनेको कहा गया। धीरे-धीरे बालक ठीक हो गया। भगवान् श्रीनाथजीने बालककी प्राण-रक्षा की। भगवान् श्रीनाथजीको शत-शत प्रणाम!

(२)

कैंसर ठीक हुआ

मेरी बड़ी पुत्री वृन्दाको मार्च सन् २०१० में कैंसरकी एक गाँठ गलेमें श्वास एवं आहार नलीके मध्यमें हो गयी, जिसके कारण भोजन करनेमें लगभग एक घंटेका समय लग जाता था। मैंने बहुत-से डॉक्टरोंको दिखाया। डॉक्टरोंने टान्सिलाइटिसकी बीमारी समझकर दवाएँ कीं। इस बीच गाँठ दिन-प्रतिदिन बढ़ने लगी। इसके कारण जरा भी ठोस खाना गलेके नीचे उतरना बन्द हो गया। अन्ततः डॉक्टरोंने बॉयोप्सीद्वारा जाँच करायी, जिससे यह पुष्टि हुई कि गलेमें गाँठ है, जिसमें कैंसरका इन्फेक्शन भी हो गया है।

डॉक्टरोंने ऑपरेशन करनेको कहा। फिर हम २९-६-२०१० को गुजरात कैंसर एवं रिसर्च इंस्टीट्यूट अहमदाबाद ले गये। विशेषज्ञ डॉक्टरको दिखाया। उन्होंने पुन: जाँच करवायी, वहाँकी रिपोर्टमें भी कैंसर ही पाया गया। डॉक्टरने बताया कि नाकद्वारा ही नली लगाकर तरल पदार्थ देना होगा। फिर डॉक्टरके अनुसार उसे तरल पदार्थ-जैसे दूध, चाय इत्यादि देना शुरू किया। डॉक्टरोंने कहा कि इस स्थानकी शल्य-क्रिया नहीं हो सकती। किमोथिरैपी एवं सिकाई ही मात्र उपचार है तथा ऐसे मरीज छ:-से-आठ माहतक ही उपचारसे जीवित रह पाते हैं। बहरहाल उपचार शुरू हुआ। अस्पतालसे उपचारके उपरान्त छुट्टी दे दी गयी। हम सभी उदास मनसे घर लौट आये। सभीको कैंसर ठीक होनेकी आशा नहीं रही।

इस दु:खकी घड़ीमें कोई आशा न रहनेपर हम सभी परिवारके लोगोंने श्रीवल्लभजीसे प्रार्थना शुरू कर दी। हमारे घरपर श्रीनाथजीकी सेवा गत ८० वर्षसे हो रही है। श्रीनाथजीसे प्रतिदिन दर्शनके समय बेटी वृन्दाके स्वस्थ हो जानेकी याचना होती। मार्च २०११ में स्थिति यह हुई कि कैंसरकी गाँठ फूट गयी, गलेसे असहनीय बदबू आने लगी। उस समय ऐसा जान पड़ा कि एक-दो दिनसे अधिकका जीवन शेष नहीं रह गया है।

सभीने श्रीनाथजीसे वृन्दाके बच जाने, उसे जीवन देनेकी याचना की। श्रीनाथजीने याचना सुन ली। बेटीके गलेकी सूजन कम होने लगी एवं धीरे-धीरे रोग सामान्य प्रतीत होने लगा। वह अपने हाथसे स्नान आदि भी करने लग गयी।

हमारे एक परिचितने भोपालमें एक मेडिकल चिकित्सालयमें डॉक्टरको दिखानेको कहा। २६-०६-११ को हमने वृन्दाको वहाँ दिखाया। डॉक्टरने कैंसरकी पुन: जाँच की। रिपोर्ट देखकर डॉक्टर भी महान् आश्चर्यमें पड़ गये कि गलेमें तेजीसे सुधार हो रहा है। उन्होंने कहा कि लगभग तीन महीनेमें नाकसें लगी नली निकाल दी जायगी, परंतु तीन किमोथिरैपी और करनी होगी।

श्रीनाथजीकी महती कृपा है कि वृन्दाको कैंसरसे मुक्ति मिल गयी। परिवारके हर्षका ठिकाना न रहा। इस घटनासे श्रीनाथजीकी दयापर हमारा अटूट विश्वास हो गया। **[श्रीहरिविट्ठलखेरजी]**

(३)

'जाको राखे साइयाँ'

लगभग बीस वर्ष पुरानी बात है, मैं अपने मैनेजरके साथ मोटर साइकिलसे खेतपर गया हुआ था। मैंने खेतसे गेहूँकी बाली बोरीमें बाँधकर अपने मोटर साइकिलमें बाँध ली। वहाँसे घरकी दूरी लगभग १८ कि०मी० थी। हम दोनों आपसमें बातें करनेमें मगन थे कि तभी एकदमसे मेरा पैर आग लगनेसे झुलस गया। हम दोनों शीघ्र मोटर साइकिलसे उतरकर दूर भागे। गाड़ीमें पेट्रोल अधिक था और गर्मीकी वजहसे इंजन गरम होनेके कारण शायद आग लग गयी होगी। हम बुरी तरह घबरा गये और कहने लगे कि हे भगवन्! हमारी रक्षा करो, मैंने मन-ही-मन कहा कि यदि कुछ न किया गया तो थोड़ी दरमें ही सारी मोटर साइकिल जल जायगी; पीछे बालियोंकी बोरी बँधी होनेके कारण आग और तेज हो गयी थी। वहीं कुछ दूरीपर चारभुजानाथका एक बहुत प्राचीन मन्दिर है। हमलोगोंने मन-ही-मन चारभुजानाथजीसे प्रार्थना की कि इस विषम स्थितिमें हमारी रक्षा कीजिये। हमारे यहाँ चारभुजानाथजीकी बड़ी मान्यता है और हमें उनपर बड़ी आस्था भी है। भगवान् चारभुजानाथजीकी कृपासे हमें उस सुनसान जगहपर मिट्टीका ढेर दिखा और हम दोनों लोग बिना देर किये अपने दोनों हाथोंसे जलती हुई गाड़ीपर जल्दी-जल्दी मिट्टी डालने लगे और थोड़ी ही देरमें भगवान् चारभुजानाथजीकी कृपासे आग बुझ गयी। महान् आश्चर्य तो तब हुआ, जब गाड़ी ठंडी हुई और मैंने अनमने ढंगसे एक किक मारी और गाड़ी स्टार्ट हो गयी। उस समय हमारे मुँहसे बरबस ही निकल पड़ा—'हे प्रभु चारभुजानाथजी! आप कितने दयावान् हैं, आपको कोटि-कोटि प्रणाम!'

[श्रीचौथमलजी गुप्ता]

पढ़ो, समझो और करो

(१)

मुझसे माँग

वकालतके पेशेमें ज्यों-ज्यों उम्र बढ़ती है, त्यों-त्यों वकीलकी कद्र बढ़ती जाती है। किंतु मेरे साथ शुरूसे ही कुछ ऐसी मन:स्थिति रही कि मैंने पैसे माँगनेमें हमेशा कंजूसी की, जिसकी वजहसे मुझे कई बार हानि उठानी पड़ी। अब ५१ वर्षकी आयुमें मुझे लगा कि कोई एक साधन ऐसा होना चाहिये, जिसमें पैसे न माँगने पड़ें और स्वत: आते रहें। अत: कुछ जमा-पूँजीका सहारा लेकर मैंने अपने निवास-स्थानके बाहर बनी दुकानोंके ऊपर दो हॉल बनवानेका निश्चय किया। इसमें भी अच्छा-खासा मजाक बना। इंजीनियरने कहा कि लगभग दस लाख रुपये इन दो हॉलोंके बनवानेमें लगेंगे, मैंने इरादा टाल दिया; क्योंकि इतने पैसे मेरे पास नहीं थे। लेकिन एक ठेकेदारने कहा कि छ: लाख रुपयेके लगभग दोनों हॉलके निर्माणमें लगेंगे। मैं निर्माणके लिये तैयार हो गया। किन्तु मकान-निर्माण कोई हँसी खेल नहीं है। मुझे अक्सर वकालतके सिलसिलेमें बाहर जाना पड़ता है। अत: निर्माण कार्यको पूरी तौरसे मेरी पत्नीने सँभाला और निर्माण पूर्ण होते-होते रुपया नौ लाखका खर्चा आया। बड़े-बड़े दो हॉल बन गये। जिनको किरायेपर देनेके लिये बड़ी कम्पनी चाहिये थी। अत: कुछ समय हॉल खाली पड़े रहे। मेरे सबसे बड़े पुत्रने नि:संकोच अपनी माँको लाकर दो लाख रुपये इन दोनों हॉलके निर्माणहेतु दिये तथा पिताजीने भी मदद की, तब जाकर काम पूरा हो सका। एकदमसे पैसेकी कमी आ गयी। कुछ कर्जा भी हो गया।

इस अभावके दौरमें जहाँ-जहाँपर पैसे चाहिये थे, वहाँ-वहाँपर दृष्टि दौड़ायी। दो मुकदमोंकी फीस रुकी हुई थी, वह भी अटक गयी। एक मुवक्किलसे इलाहाबाद जानेके लिये पैसे लेने थे। एक-दो मुवक्किलसे केसके पैसे आने थे। किंतु बार-बार टेलीफोन करनेपर भी पैसे नहीं आये और प्रयागवालेने तो मना ही कर दिया। आर्थिक संकट और बढ़ गया। घर-खर्चको पैसे नहीं दिये जा सके। कम्प्यूटर आपरेटरका वेतन नहीं दिया जा सका। डाक आदिका खर्चा भी अटक गया। परेशानीके आलममें नींद भाग गयी। भूख भाग गयी। चुप बैठे रहनेके अलावा कुछ नहीं सुझायी दिया। दो बहनें भी इस दौरान मिलने आयीं। उनके आनेसे मन कुछ हलका हुआ। इस बीचमें पत्नीसे पैसे माँग-माँगकर काम चलाया और जब काम चलना बहुत कठिन हो गया। तो मैं एक दिन अपने इष्टदेव भगवान् शंकर, जिनकी विशाल मूर्ति मैंने गणपति भवन खरीदते समय बनवाकर मन्दिरमें स्थापित कर दी थी, से बोला कि सब कुछ होते हुए भी ऐसा अभाव क्यों उत्पन्न कर दिया, मुझे इस संकटसे निकालिये प्रभु! अचानक ऐसा सुनायी पड़ा जैसे कि धीर-गम्भीर आवाजमें किसीने कहा हो, मुझसे माँग। दुनियाभरसे माँगता घूम रहा है। मुझसे नहीं माँग सकता क्या? मैं दुनियाभरको देता हूँ। तुझे नहीं दूँगा क्या? और मैंने तुरंत कान पकड़कर नतमस्तक होकर अपने इष्टदेवसे क्षमा-याचना की और कहा कि आप तो अन्तर्यामी हैं, मेरी इस भूलको क्षमा कर दें और मुझे इस संकटसे बाहर निकालें और अगले दिन अचानक ही मेरे जूनियर अधिवक्ताने मुझे कुछ रुपया दिया, जिसमेंसे आंशिक रूपसे कम्प्यूटर कर्मचारीका वेतन दिया गया और कुछ साहित्यके पत्राचारमें खर्च हुए। इसके बाद धीरे-धीरे अन्य स्थानसे भी पैसे आने आरम्भ हो गये। एक-दो मुवक्किलसे तो आशाके विपरीत पैसा प्राप्त हुआ। मैं नतमस्तक होकर अपने इष्टदेवके चरणोंको पकड़कर बैठ गया, मुझे अपनी भूलका अहसास हुआ कि मैं सबसे माँगता रहा, किंतु उससे नहीं माँगा, जो सबको देता है। इसीलिये परेशान रहा। पहले ही अपने इष्टदेवसे माँग लेता तो पहलेकी तरह वह इस बार भी मुझे दे देते। मेरे परिजनों और

पुरजनोंको मालूम है कि ऐसे ही एक आर्थिक संकटके अवसरपर मेरे इष्टदेवने लाटरीके टिकटके माध्यमसे धनकी प्राप्ति करायी थी। अब भविष्यमें ऐसी गलती नहीं करूँगा। इष्टदेवके अतिरिक्त सहायताका हाथ किसी औरके आगे नहीं फैलाऊँगा।

[श्रीहितेशकुमारजी शर्मा]

(२)

जेलसे लौटे गुण्डेसे प्राणरक्षा

घटना २७ वर्ष पुरानी है। मैं उस समय सरकारी सेवामें था। मेरी पत्नीका निधन हो चुका था। मेरे दो सन्तान हैं, बेटीका विवाह पत्नीके रहते हो चुका था। बेटा इण्टरमीडिएटमें अध्ययनरत था। मैंने गुण्डेका नाम तो सुना था, परंतु उसे पहचानता नहीं था। मैं शामके समय दूध लेनेके लिये निकला था। दूधवालेके घरसे थोड़ा पहले ही मेरे पीछे कुछ लड़के भयभीतसे भागे आ रहे थे, जिन्हें एक गहरे काले रंगका ठिगना-सा व्यक्ति, जो लगभग ४० वर्षका था, गालियाँ देता दौड़ा रहा था। दूधवालेके घरसे थोड़ा पहले रास्ता सँकरा था। अत: मैं एक किनारे खड़ा हो गया ताकि गुण्डेसे टक्कर न हो। इसपर गुण्डेने कड़ककर मुझसे कहा 'चल चल बे! आगे बढ़।' गलीके पास ही कुछ घर हैं, जहाँ कई महिलाएँ बैठी थीं। जिनमें कुछ सब्जी काट रही थीं तथा कोई चावल बिन रही थीं। गुण्डेके इस प्रकार बोलनेसे मैंने अपनेको अपमानित महसूस किया। मैंने कहा 'तमीजसे बात कर, नहीं तो तेरा जबड़ा तोड़ दूँगा।'

इस बीच वहाँ बैठी महिलाओंने गुण्डेका नाम लेते हुए कहा कि बाबूजी बहुत भले मानुष हैं, ऐसा क्यों बोल रहे हो, मैं गुण्डेका नाम सुनते ही अन्दरसे भयभीत हो गया, परंतु ऊपरसे मैंने ऐसा जाहिर नहीं होने दिया और गुण्डेको बराबर धमकाता रहा। इसी बीच दूधवालेको जब पता लगा, वह भागकर आया और गुण्डेसे कहा कि 'बाबूको क्यों छेड़ रहे हो?', इसपर गुण्डेने कहा कि मैंने इनसे कहा कि 'चाचा! आगे बढ़ो।' इसपर मैंने गुण्डेसे कहा कि तुमने ऐसा नहीं कहकर कहा था 'बढ़ बे! आगे बढ़' जो मेरे प्रति बदतमीजी थी। दूधवाला मुझे साथ ले गया और दूध देकर कहा आप चुपकेसे निकल जायँ। मैं जब दूध लेकर लौट रहा था। उस समय भी वह वहीं खड़ा मुझे घूर रहा था।

अगले दिन जब मैं दूध लेने फिर गया तो दूधवालेने मुझसे कहा कि आपके जानेके बाद गुण्डा पूछ रहा था कि इनका घर कहाँ है, मैं बमसे उड़ा दूँगा। मैं अपने कार्यालयके बाद अन्य समयमें अलीगढ़ी पैजामा एवं कुर्ता पहना करता हूँ, इसीसे वह मुझे मुसलमान समझ गया होगा। प्राय: मुसलमान भी मुझे अपनी बिरादरीका समझकर आदाब करते हैं, जबकि मैं जातिका क्षत्रिय हूँ।

मैं भयभीत तो था ही, अत: मैंने बेटेसे घटनाका जिक्र करते हुए कहा कि कुछ सतर्क रहो। मैं हर दिन कार्यालय जाते समय प्रयाग हाईकोर्टके पास बने हनुमान्-मन्दिरमें प्रणाम करके ही कार्यालयके लिये जाया करता था। किसी कारणवश यदि सुबहके समय हनुमान्-मन्दिरमें नहीं जा पाता, तो शामको कार्यालयसे लौटते समय अवश्य प्रणाम करता था तथा प्रत्येक मंगलवारको प्रसाद भी चढ़ाया करता था। घटनाके अगले दिन जब मैं हनुमान्-मन्दिर प्रणामके लिये रुका तो मुखसे अचानक निकल गया कि हे बजरंगबली! इस गुण्डेसे मेरी रक्षा करें।

घटनाके कुछ दिन बाद मैंने बेटेसे कहा कि चलो, कुछ दिनके लिये तुम्हारी दीदीके यहाँ लखनऊ चलते हैं। हम दोनों लखनऊ चले गये। मेरे मकानके एक हिस्सेमें किरायेदार भी रहता था, जो मेरी अनुपस्थितिमें घरकी रक्षा भी कर दिया करता था। कुछ दिन बाद जब हम दोनों लौटे तो किरायेदारने मुझसे कहा कि फलाँ गुण्डेको कुछ लोगोंने मिलकर मार दिया है; क्योंकि वह कट्टा दिखाकर दुकानदारों तथा आम लोगोंसे वसूली करता था। मेरा बेटा भी किरायेदारकी बात सुन रहा था। इसपर वह मुझे अकेलेमें ले गया और कहा कि मैंने लखनऊमें सपना देखा था कि यह गुण्डा मार दिया गया है। अब मैं इस घटनाको संयोग तो नहीं ही मान सकता

हूँ। मेरी प्रार्थना रामदूत हनुमान्‌जीने स्वीकारी तथा मेरे बेटेको सपनेमें सूचित भी कर दिया। जय रामभक्त हनुमान्‌की! [श्रीललितकुमार सिंहजी]

(३)

ईमानदारी बेमिसाल

घटना सन् २००९ ई० की है। मैं लखनऊसे सपत्नीक ग्वालियर अपने भानजेके विवाहमें गया हुआ था। ग्वालियर पहुँचनेपर हमें एक सेंगर साहबके यहाँ रुकवाया गया था। उनके बेटेसे मैंने कहा कि बेटा! क्या मेरा कोट प्रेस हो सकता है? उसने कहा—हाँ, क्यों नहीं। धोबी यहीं पासमें ही है। मैंने उसे कोट तथा २० रुपये प्रेसके लिये दिये। उसने तुरंत मेरे सामने कोटको तह किया और एक अखबारमें लपेटकर साइकिलके कैरियरमें बाँधकर धोबीके यहाँ देने चला गया। एक घण्टे बाद वह पुनः कोट लेने गया। जब कोट लेकर आया तो मुझे याद आया कि कोटकी जेबमें पाँच सौ रुपयेका एक नोट भी था। जब जेबमें देखा तो नोट नहीं मिला। उस लड़केको मैंने वह बात बतायी। वह बेचारा भागता हुआ जाकर धोबीके पास गया, पर तबतक प्रेस करनेवाला धोबी जा चुका था, पर जो लड़का प्रेस कर रहा था, उसने नोटके प्रति अपनी अनभिज्ञता प्रकट की। वह लड़का बेचारा निराश होकर घर आया और मुझसे बोला धोबी तो मना कर रहा है। खैर, मैंने उस लड़केको ढाढ़स बँधाया और स्वयं भी अपनेको संयत किया। चूँकि रात्रिके नौ बज चुके थे, बारातकी तैयारी हो रही थी। अतः हमलोग अपनी कारमें बैठकर बारातके साथ जनवासेमें पहुँचे। बारात लौटनेपर रात्रिमें जब सोनेके लिये लेटा तो मैं सोचने लगा कि मैंने तो कभी अपनी जानकारीमें गलत कमायी की नहीं, फिर मेरा यह नुकसान क्यों हुआ? खैर, मुझे यह भरोसा सदैव रहा है कि जब भी कभी मेरी क्षति हुई है, ऊपरवालेने भरपाई की है। सुबह जागकर दिनचर्या सम्पन्नकर स्वल्पाहार लेकर हमने वापस लखनऊके लिये प्रस्थान किया। समय बीतता गया, धीरे-धीरे नोटकी बात आयी-गयी हो गयी।

संयोगवश मैं दो वर्ष बाद अपनी बेटीके लिये वर ढूँढ़नेके क्रममें पुनः ग्वालियर गया हुआ था, तो बहनोई श्रीपरिहार साहबके यहाँ कार खड़ी की और चायपानकर पास-पड़ोसवालोंसे मिलने चला गया। चूँकि सायंकालका समय था, अतः सभी लोग घरमें मिल गये। जहाँ श्रीसेंगर साहबके यहाँ दो वर्ष पूर्व रुका था, वहाँ भी सौहार्द-भेंटहेतु गया। घरके बाहर श्रीसेंगरका वही लड़का मिला, जो मेरे कोटको प्रेस करवाने गया था। उसने मेरे पैर छुए और भागते हुए घरमें गया तथा अपने पिताजीको आवाज लगायी और कहा—पापा! लखनऊवाले अंकलजी आये हैं। श्रीसेंगरसाहब अपने हाथमें वही ५०० रुपयेका नोट, जिसपर मैंने कभी ३४००० लिख रखा था, लेकर आये और दुआ-सलामके बाद बोले—यह सँभालो अपना नोट, मैं दो वर्षोंसे सँभाल रहा हूँ। सुनकर मेरी आँखोंमें आँसू आ गये और आसमानकी ओर देखकर मैंने कहा—ऊपरवाले तू महान् है, कितना दयालु है। तूने मेरी आस्था और मजबूत कर दी। मुझे उस नोटके मिलनेकी खुशी तो कम थी, परंतु उस धोबीकी और सेंगर-परिवारकी महानताके प्रति ज्यादा थी। मैं सोच रहा था कि राह चलते ५ रुपयेका नोट भी मिल जाय तो अकसर लोग चुपचाप रख लेते हैं, यह तो पाँच सौ रुपयेका नोट था। यह नोट दो वर्षोंसे खोया था, ऊपरवालेका लाख-लाख शुक्र है। मैंने श्रीसेंगर और उस धोबीका धन्यवाद ज्ञापित किया।

पता चला कि धोबीने प्रेस करनेसे पूर्व कोटकी जेबें टटोलीं तो उसे वह नोट मिला और उसने नोटको अपने पास रख लिया और प्रेस करनेवाले लड़केको यह बात नहीं बतायी। बादमें उसने वह नोट सेंगरसाहबके घर पहुँचा दिया।

वास्तवमें रुपयेकी बात नहीं है, बात है आदमीके ईमान और नीयतकी। भले और ईमानदार व्यक्ति अपने सिद्धान्तके पक्के होते हैं। श्रीसेंगरसाहब भी इतने दिनोंसे मेरी प्रतीक्षामें नोटको सँभाले रहे, यह भी महानताकी ही बात है। [श्रीवीरेन्द्रसिंहजी चौहान]

मनन करने योग्य

परधर्मसहिष्णुताकी विजय

(श्रीगोविन्द नरहरिजी वैजापुरकर)

शिवाजी अपने तम्बूमें बैठे सेनानी माधव भामलेकरके आनेकी चिन्तापूर्ण प्रतीक्षा कर रहे थे। इसी बीच हाथमें एक ग्रन्थ लिये सेनानी पहुँचे। उनके पीछे एक डोला लिये दो सैनिक आये। डोला रखकर वे चले गये।

सेनानीने प्रसन्नमुद्रासे कहा—'छत्रपते! आज मुगलसेना दूरतक खदेड़ दी गयी। बेचारा बहलोल जान लेकर भागा। अब ताकत नहीं कि मुगलसेना यहाँ पुन: पैर रख सके।'

शिवाजीने डोलेकी ओर देखते हुए गम्भीरतापूर्वक पूछा—'यह क्या है?'

अट्टहास करते हुए सेनानीने कहा—इसमें मुसलिम रमणियोंमें सुन्दरताके लिये प्रसिद्ध बहलोलकी बेगम है, जो महाराजको भेंट करनेके लिये लायी गयी है और यह मेरे हाथका कुरान लीजिये। हमारी हिन्दू-संस्कृतिसे खिलवाड़ करनेवालोंका जी भरकर प्रतिशोध लीजिये।

शिवाजीने कुरान लेकर चूम लिया और डोलेके पास आकर पर्दा हटाया और बहलोलकी बेगमको बाहर आनेको कहा। उसको ऊपरसे नीचेतक निहारकर कहा—'सचमुच तू बड़ी ही सुन्दर है। अफसोस है कि मैं तेरे पेटसे पैदा नहीं हुआ, नहीं तो मैं भी कुछ सुन्दरता पा जाता।'

उन्होंने अपने एक अन्य अधिकारीको आदेश दिया कि ससम्मान और पूरी सुरक्षाके साथ बेगम तथा कुरान-शरीफको बहलोलखाँको जाकर सौंप आइये।

फिर शिवाजीने सेनानीको फटकारा—'सेनापते! आप मेरे साथ इतने दिन रहे, पर मुझे नहीं पहचान सके। हम वीर हैं; वीरकी यह परिभाषा नहीं कि अबलाओंपर प्रहार करें, उनका सतीत्व लूटें और धर्मग्रन्थोंकी होली जलायें। किसीकी संस्कृति नष्ट करना कायरता है। ऐसे कायरोंका शीघ्र अन्त हो जाता है। परधर्म-सहिष्णु ही सच्चा वीर है!'

सेनापतिको अपनी मूर्खतापर लज्जा आयी।

इधर पत्नी और कुरानको ससम्मान लौटाया देख बहलोलखाँ-जैसा क्रूर सेनापति भी पिघल गया। शिवाजीने उसे दिल्ली लौट जानेका जो पत्र भेजा, उसे भी उसने पढ़ लिया और अन्तमें यही निश्चय किया कि इस फरिश्तेको देखकर दिल्ली लौटूँगा।

बहलोलने सैनिक भेजकर शिवाजीसे मिलनेकी इच्छा प्रकट की। साथ ही भेंटके समय दोनोंके नि:शस्त्र रहनेकी प्रार्थना की। शिवाजीने भी स्वीकार कर लिया।

नियत तिथि और समयपर शिवाजी मशाल लिये नियत स्थानपर बहलोलकी प्रतीक्षा करते खड़े थे। इसी बीच बहलोलखाँ आ पहुँचा और 'फरिश्ते' कहकर शिवाजीसे लिपट गया। फिर शिवाजीके पैरोंपर गिरकर कहने लगा—'माफ कर दे मुझे। बेगुनाहोंका खून मेरे सर चढ़कर बोलेगा। खुदाके लिये तू तो माफ कर दे। अब मुझ-जैसे नापाक इन्सानोंको इस दुनियामें रहनेका कोई हक नहीं। सिर्फ तेरे पाक कदम चूमनेकी ख़्वाहिश थी। विदा! अलविदा!!'

बहलोल छुरा निकाल आत्महत्या करना ही चाहता था कि शिवाजीने हाथ पकड़ लिया और छुरा दूर फेंक उसे गले लगा लिया।

गीताप्रेससे प्रकाशित बाल-साहित्य ग्रन्थाकार रंगीन चित्रोंके साथ

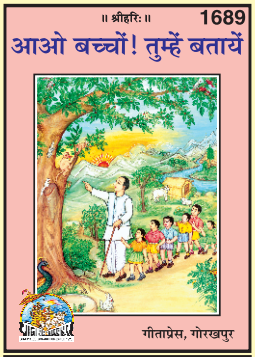

कोड 1689 ₹35

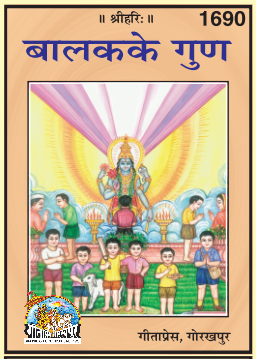

कोड 1690 ₹50

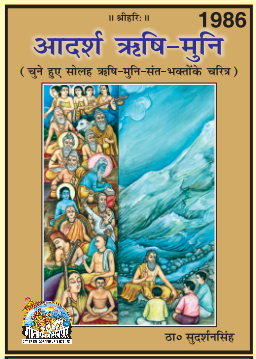

कोड 1986 ₹35

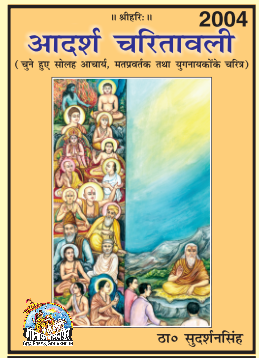

कोड 2004 ₹35

कोड 2067 ₹35

कोड 2068 ₹35

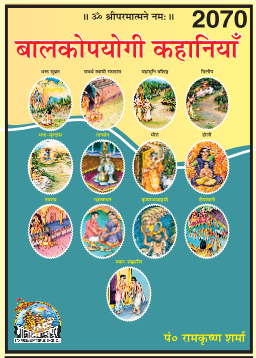

कोड 2070 ₹35

कोड 2071 ₹35

कोड 2072 ₹35

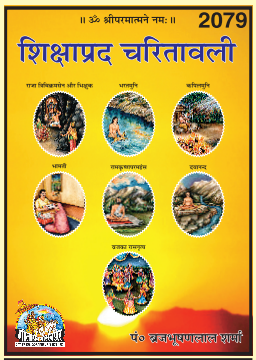

कोड 2079 ₹35

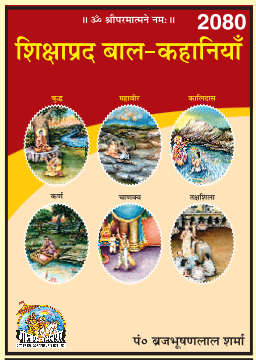

कोड 2080 ₹35

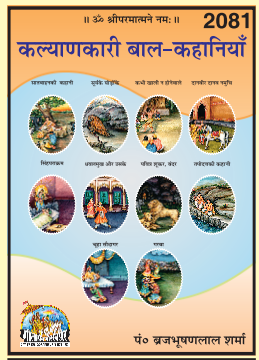

कोड 2081 ₹35

उपर्युक्तके अतिरिक्त अन्य बाल-साहित्य भी उपलब्ध हैं

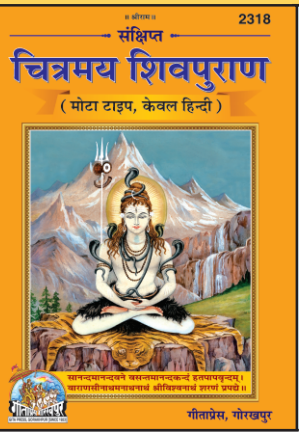

सं० चित्रमय शिवपुराण (कोड 2318) [ग्रंथाकार, बड़े अक्षरोंमें, चार रंगोंमें, कुल पृष्ठ 1088, आर्टपेपरपर] —215 से अधिक लीलाके रंगीन चित्रोंके साथ प्रकाशित इस पुराणमें परात्पर ब्रह्म शिवके कल्याणकारी स्वरूपका तात्त्विक विवेचन, रहस्य, महिमा और उपासनाका विस्तृत वर्णन है। इसमें इन्हें पंचदेवोंमें प्रधान अनादि सिद्ध परमेश्वरके रूपमें स्वीकार किया गया है। शिव-महिमा, लीला-कथाओंके अतिरिक्त इसमें पूजा-पद्धति, अनेक ज्ञानप्रद आख्यान और शिक्षाप्रद कथाओंका सुन्दर संयोजन है। रंगीन आकर्षक एवं मजबूत डिब्बेमें पैक, विवाह एवं अन्य उत्सवोंपर उपहार देने योग्य। मूल्य ₹1500, **डाकखर्च फ्री।**

प्र० ति० 20-04-2024
रजि० समाचारपत्र—रजि०नं० 2308/57 पंजीकृत संख्या—NP/GR-13/2023-2025
LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT LICENCE No. WPP/GR-03/2023-2025

॥ श्रीहरिः ॥

सावधान

1- गीताप्रेस, गोरखपुरके नामसे कोई प्रचार-वाहन गीताप्रेस नहीं चलाता है।

2- पुस्तकें एवं आयुर्वेदिक औषधिओंके अतिरिक्त अन्य कोई सामान न ही बनाता है, न बेचता है। गीताप्रेस वस्त्र विभाग केवल गोरखपुर (गीताप्रेस मार्केट), कानपुर (माल रोड), ऋषिकेश (गीताभवन-स्वर्गाश्रम) में कपड़ा दूकान संचालित करता है। इनके अतिरिक्त मिलते-जुलते नामोंसे किसी भी शहरमें चल रही कपड़ा दूकानोंसे गीताप्रेसका कोई सम्बन्ध नहीं है।
गीताप्रेसके नामपर अनेकों सामग्री जैसे—अँगूठी, माला, झोली इत्यादि वस्तुएँ बेची जा रही हैं, जो कि खरीदारके साथ धोखा है।

3- किसीके निधनपर नाम/फोटो आदि छापकर पुस्तक वितरित करनेके लिये गीताप्रेस न किसीसे सम्पर्क करता है और न ही उपलब्ध कराता है।

4- गीताप्रेसके लोगो (मोनोग्राम) का प्रयोग कुछ स्वार्थीलोग अपने निजी व्यवसायके लिये कर रहे हैं जो कि गैर-कानूनी है।

5- कल्याण मासिक पत्रके नामपर व्यापार करके लोगोंको गुमराह किया जा रहा है।

6- गीताप्रेसके नामपर किसीको डोनेशन न दें। गीताप्रेस किसी प्रकारका डोनेशन स्वीकार नहीं करता है।

7- गीताप्रेसके संस्थापक एवं गीताप्रेससे सम्बन्धित संतोंके नामपर डिजिटल मीडियामें अनेकों प्लेटफार्म बनाकर लोगोंको भ्रमित किया जा रहा है एवं गीता-प्रचारके नामपर उपर्युक्त संतोंके नामसे सोशल मीडियापर धनराशि एकत्रित की जा रही है जो कि गीताप्रेसके सिद्धान्तोंके विपरीत है। उससे हमारा कोई सम्बन्ध नहीं है।
आप सभीसे अनुरोध है कि उपर्युक्तका प्रचार (WhatsApp) व्हाट्सएप ग्रुपोंके माध्यमसे करनेकी कृपा करें।

गीताप्रेस, गोरखपुर—273005
✆ +91-9235400242 / 244 +91-9235400244
e-mail : booksales@gitapress.org—थोक पुस्तकोंसे सम्बन्धित सन्देश भेजें।
website : www.gitapress.org/gitapressbookshop.in—सूची-पत्र तथा पुस्तकोंका विवरण पढ़ें एवं गीताप्रेसकी खुदरा पुस्तकें Online डाकसे/कूरियरसे मँगवायें।
gitapress_since1923 gitapress_since1923 @GitaPress @gitapress1923